नवयुवक-हृदय-हार—६

अशान्त

निर्मोह काल के काले पट पर कुछ अस्फुट लेखा
सब लिखी पड़ी रह जाती सुख-दुखमय जीवन-लेखा

'प्रसाद'

पंडित विनोद शंकर व्यास

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

प्रकाशक

वैदेहीशरण,

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (विहार)

रथयात्रा (आषाढ़), १९८४

मुद्रक

गणपति कृष्ण गुर्जर

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

प्रोफेसर पं० हरिशंकर भट्ट, एम. ए.

(जूनागढ़–कालेज)

वे दिन बड़े सुहावने थे, जब हम और आप भावों के उमंग में कुछ लिखने की चेष्टा किया करते थे । स्वप्न की तरह दस वर्ष समाप्त हो गये । उस काल का स्मृति-चिन्ह यह "अशान्त" लिखा हुआ पड़ा रहा । इसकी अस्तव्यस्त कापी एक दिन मिल गई! फिर इसे प्रकाशित कराने का कुतूहल-सा मन में हुआ । उस बाल्य-रचना को मैं कहाँ तक सुधारता ? जैसा भी हो, उसे आप अवश्य अपनावेंगे ।

विनोद

अशान्त

१

सुनहली किरणों की चादर ओढ़कर सुन्दरी सन्ध्या, घूँघट में से छिपकर देखती हुई, आकाश से बिदा माँग रही थी। वायु का एक झोंका वृक्षों से कुछ कहकर चला गया था। दुलारी के घर पर बैठा हुआ ललित उससे बातें कर रहा था। दुलारी अपनी गुड़िया को आभूषण और कपड़े पहना रही थी।

ललित ने कहा—दुलारी, गुड़िया तो बड़ी सुन्दर है !

दुलारी ने उत्तर दिया—हाँ, अबकी अम्मा ने मेरे लिए अच्छी-सी गुड़िया बनवा दी है। मेरी गुड़िया का विवाह है न !

किसके यहाँ ठीक किया है दुलारी ?

सरला के यहाँ !

मेरे यहाँ अपनी गुड़िया का विवाह नहीं करोगी ?

तुम्हारा गुड्डा कहाँ है ?—यह तो लड़कियों का खेल है, तुम अपने गेंद से खेलो।

नहीं, मैं भी एक बनवा लूँगा—तुम मेरे ही यहाँ उसका विवाह करना।

नहीं, सरला फिर बुरा मान जायगी तब ?

जैसी तुम्हारी इच्छा !

ललित के मकान के समीप ही दुलारी का भी मकान था। वह जब पाँच वर्ष की थी, तभी उसके पिता का देहान्त हो गया था। पिता कुछ सम्पत्ति छोड़ गये थे। उसी से उसका और उसकी माता का निर्वाह हो रहा था। उसको अपने पिता की स्मृति भूली नहीं थी। उसे अपने पिता की गोद में खेलना, उनकी थाली में साथ बैठकर भोजन करना, उनके साथ बाहर घूमने जाना—इत्यादि सभी बातें याद थीं। जब कभी वह अपनी माँ से पूछती, माँ ! बाबूजी कब आवेंगे ? उस समय माता अपने नेत्रों में आँसू भरकर रुँधे कंठ से उत्तर देती—बेटी, पर साल आवेंगे !

किन्तु कई वर्ष व्यतीत हो गये, वह नहीं आये। फिर दुलारी पूछती, और उसकी माँ उसे बहलाने के लिए वही उत्तर दे देती। बहुत दिनों के बाद दुलारी को मालूम हुआ कि उसके पिता ऐसे देश में चले गये हैं, जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता।

  

दुलारी ग्यारह वर्ष की हो चुकी थी। उसकी माँ सदैव उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करती थी। उसका सारा समय खेल-कूद में ही बीतता था। ललित से उसकी खूब बनती थी—प्रायः दोनों एक साथ ही खेला करते थे। खेल में जब कभी किसी के साथ उसकी लड़ाई हो जाती, तो ललित सदैव उसी का पक्ष लेकर लड़ने को तैयार हो जाता था। वह भी ललित का ही पक्ष करती।

ललित स्कूल में पढ़ता था। दुलारी भी गर्ल-स्कूल में पढ़ने

जाया करती थी। वह गर्ल-स्कूल की गाड़ी पर बैठकर स्कूल जाती थी। ललित कभी-कभी मार्ग में उसे परिचित की तरह देखता था। दोनों इसी तरह अपने मधुर जीवन को हँस-हँसकर व्यतीत कर रहे थे।

जब कभी ललित की माँ दुलारी की माँ से मिलती, तो कहती—बहन, दुलारी बड़ी प्यारी और सुन्दर लड़की है। उसके भोलेपन पर मुझे बड़ा तरस आता है।

दुलारी की माँ उत्तर देती—तुम्हें दुलारी अच्छी लगती है और मुझे ललित। बड़ा सुशील बालक है। क्या कहूँ, तुम मेरी जाति की होतीं, तो मैं दुलारी का विवाह ललित से कर देती। उसके ऐसा वर खोजने पर भी दुलारी के लिए नहीं मिलेगा।

हाँ बहन, जाति की ही गड़बड़ है। नहीं तो दोनों सुख से रहते। आपस में बनती भी है।

श्रावण मास था। वर्षा के काले बादल दिन-रात आकाश में मँड़राया करते थे। देवी-पूजा की धूम थी। उस दिन ललित के घर के लोग भी बगीचे में गये थे। ललित की माँ ने दुलारी और उसकी माँ को भी अपने साथ ले लिया था। पड़ोस की भी बहुत-सी स्त्रियाँ उसके यहाँ गई थीं। खासा एक दल एकत्र हो गया था।

देवी-पूजा के पश्चात् उपवन में भोजन बन रहा था। आम के वृक्ष में झूला पड़ा था। सब बालक-बालिका झूले पर झूल रहे थे। ललित बड़े उत्साह से झूले पर जोर से पेंग लगा रहा था।

दुलारी ने कहा—अरे! मैं गिर जाऊँगी ललित! इतने जोर से झूला न चलाओ।

ललित ने कहा—रस्सी पकड़े रहो, गिरोगी नहीं। इतना घबराती क्यों हो दुलारी ?

उसी समय पश्चिम दिशा से काले मेघों का एक झुंड आ रहा था। हरे-हरे वृक्षों की अपूर्व शोभा थी। सब लड़कियों ने मिलकर गाना आरम्भ किया—सखि आवत रैन अँधेरी, घटा कारी-कारी ला!

ललित को विशेष आनन्द आता। वह और जोर से झूला चलाने लगा। आकाश में मेघों की गड़गड़ाहट हुई। एकाएक झूले की रस्सी टूट गई! सब लोग जमीन पर गिर पड़े। किन्तु सौभाग्य से किसी को चोट नहीं लगी।

कुछ देर बाद सब लोगों का भोजन हो रहा था। रात्रि का समय था। पानी बरसकर बन्द हो गया था। काले मेघों से छिपा हुआ चन्द्रमा जब निकल पड़ता, वृक्षों पर पड़ी हुई वर्षा की बूँदें मोतियों के समान चमक उठतीं! एक शीतल समीर वृक्षों को हिला देता, बूँदें चू पड़तीं! बड़ा ही सुहावना दृश्य था! पास के आम के वृक्ष पर से एक कोयल ने अपनी मधुर रागिनी में कहा—कू-उ-ऊ! दूर के पेड़ पर से उत्तर मिला—कू-उ-ऊ!

ललित ने कहा—देखो दुलारी, कोयल बोल रही है!

दुलारी ने कहा—हाँ।

फिर कोयल ने कहा—कु-उ-ऊ!

ललित ने भी ललित कंठ से कहा—कू-उ-ऊ!

स्तब्ध! कोयल चुप हो गई! दुलारी ने सरस स्वर में फिर कहा—कू-उ-ऊ!

कोयल फिर बोल उठी ! ललित लज्जित हो गया । कहने लगा—मालूम होता है, कोयल भी तुमसे परिचित है !

कुछ देर में सब अपने-अपने घर चले आये ।

  

दो वर्ष बीत गया ।

ललित को पढ़ने में विशेष ध्यान देना पड़ता था । घर पर अध्यापक पढ़ाने के लिए आते थे । वह भावुक भी था । मनुष्यों से मिलने से—चाँदनी रात, गंगा की कलकल ध्वनि, ऊषा की लाली और दिनकर का अस्त होना देखने से—उसे अधिक प्रेम था । यह उसके जीवन की स्वाभाविक घटना थी । वह कविता का अध्ययन भी करता था । समय पर दुलारी से अवश्य मिलता था । कभी-कभी शाम को स्कूल में ही खेलने जाया करता था ।

किन्तु दुलारी में अब परिवर्तन हो चला था । लज्जा और संकोच ने उसके हृदय में अपना घर बना लिया था । अब वह घर से बाहर खेलने के लिए नहीं निकलती थी ।

एक दिन दुलारी, अपने घर पर बैठी हुई, किरोशिया की एक बेल बिन रही थी । ललित भी दुलारी के घर पहुँचा था । उसने कहा—दुलारी, यह क्या बना रही हो ?

बेल बनाना स्कूल में सिखलाया जाता है । यह तकिया की झालर बिन रही हूँ ।

क्या करोगी ?

तकिया में लगाऊँगी ।

किसके ?

क्षण-भर के लिए दुलारी विचार करने लगी। फिर बोली—अगर तुम्हें पसन्द हो, तो तुम्हारे ही तकिया में लगा दूँगी।

बड़ी कृपा होगी—कहते हुए ललित एक टक देख रहा था। उसका हृदय कुछ कहना चाहता था; किन्तु कहने का साहस न था। दोनों कुछ देर चुप थे। फिर ललित ने पूछा—आज-कल क्या पढ़ती हो?

रामायण, रहीम और वृन्द के दोहे। और तुम क्या पढ़ते हो?

मैं हिन्दी में तो तुलसीदास, सूरदास और बिहारी की कवितायें पढ़ता हूँ; और अँगरेजी में वर्ड्सवर्थ आदि कवियों की। मुझे तो काव्य पढ़ने में जितना आनन्द आता है, उतना ही तुम्हारे दर्शन होने पर भी। तुमने रहीम का वह दोहा तो पढ़ा होगा?

कौन?

रहिमन निज मन की व्यथा!

हाँ।

फिर कुछ देर के लिए दोनों चुप थे। दुलारी मस्तक नवाये बैठी थी। बड़ा साहस करके ललित ने कहा—दुलारी!

हाँ,

एक बात पूछूँ?

क्या?

ठीक उत्तर दोगी?

बात सुनूँ भी तो।

तुम मुझे चाहती हो?

दुलारी का हृदय लज्जा से धँसा जाता था। उसने कुछ उत्तर

नहीं दिया। ललित ने फिर पूछा—उत्तर क्यों नहीं देती ? बोलो, तुम मुझे चाहती हो ?

नहीं !

तो मैं भी तुम्हें नहीं चाहता।

न चाहो !

क्यों ?

सो मुझे मालूम नहीं।

दोनों हँसने लगे। ललित अपने घर चला गया।

२

ललित दो वर्ष का था, तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। तभी से उसके चाचा कल्याणसिंह घर-गृहस्थी का संचालन करते थे। भाई-भाई में अनबन होने के कारण पैतृक सम्पत्ति में बँटवारा हो गया था। कल्याणसिंह और ललित के पिता अलग-अलग रहते थे। ललित के पिता बड़े रसिक थे; अतएव बहुत-सा धन उन्होंने नष्ट कर दिया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् ललित पर कल्याणसिंह का प्रेम बढ़ गया था। कारण, उनके कोई सन्तान न थी।

कल्याणसिंह पुराने ढंग के पुरुष थे। उन्हें नया ढंग पसन्द नहीं था। ललित के अँगरेजी पढ़ने पर, उसकी चाल-ढाल पर, उसके रहन-सहन पर उन्हें सन्तोष न था; किन्तु कुछ कहते नहीं। कारण, ललित के पिता की बड़ी इच्छा थी कि वह पढ़-लिखकर

उच्च स्थान प्राप्त करे, और उसकी माँ भी चाहती थी कि ललित पढ़-लिखकर कम-से-कम डिप्टी-कलक्टर हो !

ललित अब एण्ट्रेन्स पास कर चुका था। कल्याणसिंह ने एक दिन कहा—ललित ! तुम अपना पढ़ना समाप्त कर दो। अब पढ़ने-लिखने से कोई लाभ नहीं है। अब घर का काम देखो। मेरी अब वृद्धावस्था है। मेरे सामने ही जमीदारी का सब काम सीख लोगे, तो अच्छा होगा।

ललित का भी अब पढ़ने में मन नहीं लगता था। कालेज जाना उसे अब एक बोझ-सा मालूम पड़ने लगा। वह चाहता था एकान्त में बैठकर कवितायें और उपन्यास पढ़ना। उसने बड़ी नम्रता से कहा—जैसी आपकी आज्ञा।

जमीदारी का काम सीखने के लिए कालेज छोड़ देने का ललित को एक अच्छा बहाना मिल गया। किन्तु जमीदारी के काम से भी वह उतनी ही दूर भागना चाहता था, जितना कि कॉलेज जाने से। वह चाहता था प्रेम की भीषण लहरों के साथ किलोल करना और यही था उसके सुख का साधन। किन्तु करता ही क्या, विवश था।

कल्याण ने कहा—तो कालेज छोड़ दो, मेरे साथ गाँव पर चलो। अब तुम्हें वहीं रहना होगा।

गाँव पर जाने की ललित की जरा भी इच्छा नहीं थी; अतएव वह चुप था। कल्याण ने कठोर होकर पूछा—क्या गाँव पर जाने की इच्छा नहीं होती है ? शहर के सुख तो वहाँ मिलेंगे नहीं; मगर अब तो चलना ही होगा; न चलने से काम भी तो नहीं चलेगा। इस तरह कब तक बीतेगा।

ललित—आप कब तक गाँव पर जायँगे ?

चार दिन बाद जाऊँगा, और तुमको अपने साथ ले चलूँगा।

क्या अबकी ही बार आपके साथ चलना होगा ?

हाँ, जितना मैं कहता हूँ, उतना करना होगा।

ललित माँ के पास पहुँचा। कहा—माँ, चाचाजी के साथ गाँव पर जाना होगा। कहते हैं, अबकी बार मेरे साथ ही चलना होगा।

माँ ने कहा—ठीक तो है। बेटा, घर का काम देखना ही चाहिये। तुम जानते हो कि तुम्हारी चाची से मेरी नहीं बनती; नहीं तो मैं भी तुम्हारे साथ ही चलती। पर कोई चिन्ता नहीं, तुम जाओ, कभी-कभी यहाँ आते रहना।

माँ का उत्तर पाकर ललित समझ गया कि अब जाना ही पड़ेगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। दुलारी का साथ छोड़ना उसके लिए सबसे कठिन कार्य था। न वह दुलारी को बिना देखे रह सकता था और न दुलारी उसके बिना।

दुलारी से मिलने के लिए ललित गया था। वह अपने स्कूल की पाठ्य पुस्तक पढ़ रही थी। ललित ने कहा—दुलारी! पढ़ रही हो?

हाँ।

आज-कल पढ़ाई पर विशेष ध्यान देती हो।

नहीं तो। केवल कभी-कभी पढ़ लेती हूँ। पाठ न याद रहने पर स्कूल में सब लड़कियों के सामने अपमान सहना पड़ता है।

मैंने तो अब पढ़ना छोड़ दिया दुलारी!

क्यों ?

अब चाचाजी के साथ गाँव पर वहाँ का काम देखने जाता हूँ। वह कहते हैं, पढ़-लिखकर क्या होगा।

तो तुम यहाँ से चले जाओगे क्या ?

हाँ।

कब ?

कल जाऊँगा।

और अगर न जाओ तो ?

न जाने से चाचाजी रुष्ट हो जायँगे।

तुम्हारे चले जाने से बड़ा सूना हो जायगा !

मुझे भी बड़ा सूना लगेगा; मगर क्या करूँ, अपने मन का तो हूँ नहीं !

फिर कब आओगे ललित ?

देखो कब आता हूँ ! जहाँ तक होगा, जल्दी आऊँगा।

दुलारी के नेत्रों में अश्रु लहरों की तरह हिल रहे थे। ललित उदास था। उसने एक आह खींचकर कहा—अच्छा, जाता हूँ !

दुलारी ने कुछ विचारते हुए कहा—मुझे भूल तो नहीं जाओगे ?

प्रयत्न करूँगा, देखूँ, भूल सकता हूँ—कहता हुआ चला गया।

दूसरे दिन अपने चाचा के साथ गाँव पर चला गया।

३

चंचल पवन के झकोरे सूखे पत्तों को उड़ा-उड़ाकर वसन्त के आगमन का सन्देश सुना जाते थे। दिनकर आकाश में अपना आधा मार्ग समाप्त कर चुके थे। कल्याणसिंह अपने द्वार के सामने बैठे थे। ललित भी उनके पास ही बैठा था। कल्याणसिंह इसी 'रामपुर'-गाँव के जमींदार थे। कई असामी और मिलने वाले लोग भी सामने बैठे थे।

ललित की तरफ देखते हुए एक ने कहा—बच्चाजी की तबीयत तो यहाँ नहीं लगती है। शहर में रहने वालों का गाँव में कैसे मन लग सकता है।

कल्याणसिंह ने कहा—मन लगाना ही पड़ेगा। जमींदारी का काम है। मेरे बाद तो यही मालिक हैं। अभी से न देखेंगे, तो कैसे काम चलेगा।

बीच ही में एक दूसरा वृद्ध बोल उठा—ठाकुर-साहब, अबकी फसिल तो बहुत अच्छी हुई।

कल्याण—हाँ, फसल तो बहुत ही अच्छी हुई है। खूब अन्न पैदा हुआ है; मगर इस पर भी असामी लोग रुपया नहीं देते; और बहाना करते हैं! मैं कहाँ तक छोड़ सकता हूँ। विवश होकर सबके ऊपर नालिश करनी पड़ी है।

वृद्ध—जी हाँ, बहुत-से लोगों की प्रकृति ऐसी होती है कि बिना नालिश के रुपया देते ही नहीं।

कल्याण—और फिर लोग मुझे ही कहते हैं कि ठाकुर-साहब

बड़े बेरहम हैं—किसी का घर उजाड़ देते हैं; किसी को गाँव से निकाल देते हैं। मैं क्या करूँ ? जब रुपया नहीं वसूल होता है, तो सख्ती करनी ही पड़ती है। मेरी खेती तो रुपयों की है। जब रुपया छींटता हूँ, तब रुपया आता है। कोई मुफ्त तो दे नहीं जाता। देखिये न, यह 'सुखुआ अहीर' आपके सामने बैठा है—इसके यहाँ पाँच वर्ष का रुपया बाकी है; नहीं देता था। अन्त में इसकी जमीन निलाम कराया, फिर भी सब रुपया नहीं मिला। अब भी पचास बाकी हैं।

यह कहते हुए कल्याणसिंह सुखुआ की तरफ देखने लगे। सुखुआ उनसे दया-याचना करने के लिए आया था। उसने कहा—सरकार ! रुपया जुटता ही नहीं था, कहाँ से देता। पेट काट कर कुछ-न-कुछ देता रहा; मगर सूद चढ़ता गया; और मेरे दिये न दिया गया। सब कुछ नीलाम हो जाने पर भी पचास रुपया बाकी है। अब जाता हूँ, कमाकर वह भी अदा कर दूँगा।

कल्याण—मेरा सब रुपया जल्दी अदा कर देना, नहीं तो मुझे जानते ही हो।

सुखू—सरकार ! अब तो गाँव छूटा, घर छूटा, कौड़ी का तीन हो गया हूँ। गरीब पर दया कीजिये, ईश्वर आपका भला करे !

कल्याण—मैं अब कुछ नहीं कर सकता। सब बाकी रुपया मजदूरी करके जल्दी अदा कर देना।

सरकार की जैसी मर्जी; जाता हूँ ! कमाकर आपका एक-एक पैसा अदा कर दूँगा।

यह कहते हुए सुखुआ चला गया।

  

कल्याणसिंह का गाँव में बड़ा मान था। जिसको रुपयों की आवश्यकता होती, कल्याणसिंह से कर्ज लेता। परन्तु सूद इतना चढ़ता कि बड़ी कठिनाई से वह रुपया चुका पाता, और नहीं तो उसकी जायदाद बिकती !

इसी तरह बड़े परिश्रम और उद्योग से कल्याणसिंह ने देखते-देखते अपनी सम्पत्ति बढ़ा ली। उनका सिद्धान्त था—

जहाँ में जहाँ लों जमीं पाइये।
इमारत बनाते चले जाइये॥

उनके सन्तान न थी; इसी लिए ललित को अपने लड़के की तरह मानते थे। एक दिन, भोजन करते समय, अपनी स्त्री से बोले—मैं देखता हूँ, जो कुछ मैंने पैदा किया है, उसे ललित नहीं रख सकेगा।

स्त्री ने उत्तर दिया—आप ही ने तो उसे अँगरेजी पढ़ाकर नष्ट कर डाला है। अब उसका मिजाज आस्मान पर चढ़ गया है।

कल्याण—अब तो नित्य उसे अच्छा-अच्छा कपड़ा चाहिये। रोज एक नया खर्च लगा रहता है। मैं नहीं जानता था कि वह अपने बड़ों की चाल छोड़कर नये रंग में रँग जायगा।

स्त्री—आप संसार की हालत देखते ही हैं कि आज-कल अँगरेजी पढ़कर लड़के खराब हो जाते हैं। फिर भी आपने उसे अँगरेजी पढ़ाया। न तो वह अच्छी तरह पढ़ ही सका, और न घर का काम ही देखना सीखा। अब तो न वह इधर का रहा न उधर का।

कल्याण—मेरा तो विचार ही दूसरा था। मैं समझता था कि अँगरेजी पढ़ लेगा, तो कचहरी का काम अच्छी तरह से कर लेगा।

अफसरों से अँगरेजी में बातें कर लेगा; फिर अपने घर का काम भी अच्छी तरह से चला सकेगा। किन्तु परिणाम दूसरा ही हुआ। अब काम-काज तो दूर रहा, उसका खर्च ही घर-भर के खर्च से अधिक है!

स्त्री—घर का भोजन तक उसे अच्छा नहीं लगता।

अभी बात हो ही रही थी कि ललित भी स्नान करके भोजन के लिए आया। खाने के लिए बैठ गया। कुछ देर बाद कहा—चाचाजी, एक टमटम बहुत अच्छी बिकाऊ है। अगर आप रुपया दें, तो उसे खरीद लूँ। शाम को हवा खाने के लिए एक सवारी चाहिये ही।

कल्याण—इस तरह व्यर्थ खर्च करने से क्या लाभ है। गाड़ी रखने से खर्च बढ़ेगा। उसकी अभी कौन-सी आवश्यकता है?

रुपया तो खाने-खर्चने के ही लिए है! उसे रखकर क्या होगा?

जब पैदा करोगे, तब मालूम होगा। एक-एक पैसा जोड़कर रुपया होता है। इस रुपये के लिए मैंने कितना अत्याचार किया है, यह मैं ही जानता हूँ।

जैसा आप उचित समझें—कहकर ललित चुप हो गया। कुछ देर में भोजन समाप्त करके उठ गया।

ललित से और कल्याणसिंह से प्रायः रुपये के लिए ही अन-बन रहा करती थी। कल्याणसिंह की वृद्धावस्था आ चली थी, और ललित खानदान-भर में एक ही लड़का था। इसी लिए उन्हें कभी-कभी उसकी बात मान लेनी पड़ती थी। ललित भी समझता कि सुख के लिए ही धन है। अतएव वह सुख से अपना जीवन व्यतीत करना चाहता था।

  

कल्याणसिंह के गाँव में कुछ दूर पर एक टीला था। उसी टीले पर एक छोटा-सा उपवन था। वहीं शिवजी का एक मन्दिर भी था। शिव-मन्दिर के सामने रंग-बिरंगे पुष्पों की क्यारियाँ बनी थीं। पुष्पों के सौरभ से उपवन भरा रहता था। उपवन के वृक्षों पर पक्षी सदैव कलरव करते थे। गाँव का वह स्वर्ग था। बड़ा एकान्त स्थान था। टीले के नीचे एक छोटी-सी नदी बहा करती थी।

ललित को वह स्थान अधिक पसन्द था। अतएव शिव-मन्दिर के सामने वहाँ पर जो एक कमरा बना था, उसी में वह प्रायः रहा करता था। कल्याणसिंह के साथ वह जमींदारी का काम सीखने के लिए आया था, किन्तु जमींदारी के काम में उसका मन ही नहीं लगता था। इसी लिए वह उस पर कुछ ध्यान भी नहीं देता था।

ऊषा की लाली, प्रभात का सुन्दर दृश्य और दिन का अस्त होना देखकर ललित बड़ा प्रफुल्लित होता था। पूर्णिमा के चन्द्रदेव का मस्तानी चाल से आकाश में धीरे-धीरे उठना—नदी की लहरियों का उनकी कमनीय किरणों से अठखेलियाँ करना आदि देखकर उसके हृदय में सुख और दुःख दोनों उत्पन्न होता था। सुख इस लिए कि वह स्वर्गीय सौन्दर्य था, और दुःख इस लिए कि उसे देखकर अतीत की वह स्मृतियाँ जाग्रत होतीं, जो हृदय में कोलाहल उत्पन्न किये बिना न रहती थीं।

स्मृति एक दर्दनाक पुकार है—ऐसी पुकार, जो दूसरा नहीं सुन सकता। उसकी कोई दवा नहीं।

ललित जब तक दुलारी के साथ में रहता था, उसे यह ज्ञात

नहीं था कि दुलारी के लिए कभी उसके हृदय में भयानक दर्द उत्पन्न होगा। अब उसे दुलारी की एक-एक बात याद आती। उसे दुलारी में कोई अवगुण नहीं दीखता। वह अपने हृदय में दुलारी की प्रत्येक बात की प्रशंसा करता।

विरह ही प्रेम की कसौटी है। वही मिलन-सुख का एक सुनहला पर्दा है। वह पर्दा सुख को छिपाये रहता है।

ललित भावुक था। उसके पास हृदय था। कल्पना के एक नये संसार की रचना हुई थी। सुख की अनन्त अभिलाषा थी। किन्तु अभी साधन नहीं था, समय नहीं आया था।

ललित शिव-मन्दिर के पास बैठकर चाँदनी में अपनी सितारी बजाता था। उसने कई वर्ष से सितार बजाने का अभ्यास किया था। सितारी के एक-एक तार में उसके अन्तरात्मा की पुकार भरी थी। वायु के साथ पत्तों की खड़खड़ाहट और उसके साथ मिलकर सितारी का स्वर एक स्वर्गीय संगीत उत्पन्न करता था। उसी में ललित को शान्ति मिलती। कुछ देर के लिए वह अपने को बिल्कुल भूल जाता था।

कल्याणसिंह दिन-पर-दिन ललित की ओर से निराश होते जाते थे। समझते थे—लड़का अब नहीं सुधरेगा। इस लिए तो शहर छुड़ाकर यहाँ लाये, किन्तु उसका रंग-ढंग यहाँ भी ठीक नहीं है।

कभी-कभी अकेले में बैठकर वह उसको बहुत समझाने की चेष्टा करते; परंतु उसका स्वभाव ही कुछ दूसरी तरह का था। वह जमींदारी के कल्पित अत्याचारों से दूर ही रहना चाहता था। शहर में उसने समझा था कि जमींदारी का काम बहुत अच्छा है,

बड़ा मान होता है, धन मिलता है। किन्तु गाँव पर आकर जब उसने प्रत्यक्ष देखा, तो उसकी भावना ही बदल गई। नित्य नये-नये उत्पात, दूसरों को नष्ट करने का प्रयत्न, झूठी प्रशंसा की अभिलाषा—ये सब बातें उसे पसन्द नहीं थीं। अतएव वह इस झमेले से दूर ही रहना चाहता था।

कई मास इसी तरह व्यतीत हो चुके। ललित की आँखें दुलारी को देखने के लिए व्याकुल रहती थीं। वह अब अपने को सम्हाल नहीं सकता था। एक दिन, बड़ा साहस करके उसने अपने चाचा से कहा—चाचाजी, बहुत दिन हो गये, माँ को देखने की इच्छा होती है। वह अकेली है। उसके कई पत्र भी आ चुके हैं कि कब तक आओगे। मैंने लिखा था कि जहाँ तक होगा, जल्दी आऊँगा।

कल्याण—तुम्हारी इच्छा हो, तो जाओ। यहाँ रहकर भी तो तुम कुछ काम नहीं करते। न जाने ईश्वर तुम्हें कब बुद्धि देगा। अच्छा, जाओ, दो-चार दिन रहकर चले आना।

अगले सप्ताह में ललित के जाने का निश्चय हो गया था। एक-एक दिन वर्ष के समान कटता था। वह विचार करता—इतने दिनों पर दुलारी से भेंट होगी! वह बड़े आश्चर्य से देखेगी!

  

दिन-पर-दिन बीतने लगे।

दुलारी अब सयानी हो चली थी। वह विचार करती—ललित को गये इतने दिन हो गये, अभी तक लौटकर नहीं आये।

ललित के प्रति उसकी प्रीति बहुत बढ़ गई थी।

आदमी के न रहने पर ही उसकी कदर होती है। ललित के

यहाँ न रहने पर उसकी विशेषतायें दुलारी को मालूम पड़ने लगीं। वह ललित को हृदय से चाहती थी। किसी निर्जन रजनी में उसने शय्या पर पड़े-पड़े ललित के लिए अश्रुओं की अंजलि चढ़ाई थी। अपने हृदय की व्यथा वह किससे कहती ?

प्रेम की भाषा पक्षियों की भाषा है। उसे दूसरा नहीं समझ सकता। एक पक्षी की बात दूसरा पक्षी ही समझता है।

दुलारी का बाल्य-जीवन समाप्त हो गया था। अब वह जीवन उसके लिए स्वप्न-सा था। अब वह दिन-भर घर के काम में व्यस्त रहती, अपनी माँ को कोई काम नहीं करने देती। अपनी माता की वह बड़ी लाड़िली थी। कभी-कभी उसकी माँ अश्रुपात करती हुई कहती—बेटी! तू चली जायगी, तो मुझे एक लोटा पानी देने वाला भी कोई न रहेगा।

दुलारी भी इन बातों पर रोने में अपनी माँ का साथ देती थी! उसके सयानी होने से उसके विवाह की चिन्ता ने उसकी माँ को व्याकुल बना दिया था। पड़ोस के लोग कहते—इतनी सयानी लड़की कब तक घर में रहेगी ? उसका विवाह हो जाना ही अच्छा है।

बहुत खोजने पर दुलारी के लिए एक लड़का मिला। वह पढ़ा-लिखा और सुन्दर भी था। दुलारी की माँ ने उसी से दुलारी का विवाह करना निश्चित किया।

दुलारी जब अपने विवाह की बात सुनती, तो मूर्त्ति के समान हो जाती! न जाने उसे क्यों इतना भय लगता। वह विचार करती, हाय! क्या एक दिन ललित से अलग होना होगा?

दुलारी वह पक्षी थी, जो पिंजड़े में पालकर ही बड़ी की गई

हो। उसे जंगलों में वायु के गान का, नदियों की कल-कल ध्वनि का और स्वतंत्र जीवन का अनुभव ही न था। वह अबोध थी, और ललित को ही अपने अन्तस्तल के राज्य का सम्राट समझती थी।

ललित घर आ गया था। उसे देखकर उसकी माता की आत्मा गद्गद् हो गई थी। माँ ने पूछा—ललित, तुम इतने दुर्बल क्यों हो गये हो? वहाँ कोई कष्ट था क्या?

नहीं माँ, कष्ट तो कोई नहीं था। चाचाजी के डर से इतने दिनों तक रह गया।

बहुत दिनों पर ललित घर आया था। अतएव, वह अपने सब इष्ट-मित्रों से मिला।

सन्ध्या का समय था। आकाश में इन्द्र-धनुष निकला था। ललित अपने कमरे की खिड़की पर बैठा था। कुछ देर में उसे दुलारी अपने मकान पर दिखलाई दी। वह ललित की तरफ देख रही थी, और ललित उसकी तरफ देख रहा था। दोनों के एक भाव थे।

दुलारी को मालूम हो गया था कि ललित आ गया, और ललित भी दुलारी से मिलने के लिए व्याकुल था। मगर इतने दिनों के बाद उसे दुलारी के घर जाने में संकोच होता था। आखिर बहुत साहस करके वह दुलारी के घर गया। दुलारी की माँ ने कहा—बहुत दिनों पर आये बेटा! अच्छे तो रहे?

जी हाँ, आपके आशीर्वाद से अच्छी तरह था। अपना समाचार कहिये? दुलारी अभी पढ़ती है?

नहीं, अब वह पढ़ने नहीं जाती। अब उसका विवाह निश्चित हो गया है।

विवाह का नाम सुनकर ललित के हृदय पर वज्र गिर पड़ा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया—चुप रह गया।

उसी समय सामने से दुलारी आई। संकोचवश दूर ही खड़ी थी। ललित ने पूछा—दुलारी, अच्छी तरह हो ?

दुलारी ने मस्तक हिलाकर 'हाँ' का संकेत किया।

फिर दुलारी ने पूछा—आप कब आये ?

आज ही तो आया हूँ।

अब तो रहेंगे न ?

यहाँ रहने का अब ठीक नहीं है !

क्यों ?

इसी तरह !

दुलारी विचार करने लगी। उसकी माँ रसोई-घर में चली गई थी। ललित बैठा था। उसके सामने दुलारी बैठी पान बना रही थी। ललित ने बड़े साहस से पूछा—सुना है, तुम्हारा विवाह होने वाला है।

दुलारी का हृदय धक-धक कर रहा था। वह चुप थी। ललित उसकी तरफ देख रहा था। दुलारी ने कहा—मुझे नहीं मालूम।

तो विवाह होने पर तो तुम भी यहाँ से चली जाओगी !

विवश हूँ ! क्या करूँ ! हे ईश्वर !

यह कहते हुए एक आह खींचकर दुलारी ने मस्तक नीचा कर लिया !

ललित ने कहा—अच्छा, अब जाता हूँ, तुम कल मेरे यहाँ आना। कुछ बातें करनी हैं।

अच्छा, आऊँगी—लो, पान तो खा लो।

ललित ने पान लेकर खा लिया, और दुलारी की तरफ देखता हुआ अपने घर की ओर चला गया।

दूसरे दिन दोपहर में भोजन आदि बनाकर दुलारी, ललित के घर जाने के लिए, अपनी माँ से बोली—माँ, मैं ललित के घर जाती हूँ। थोड़ी देर में चली आऊँगी।

माँ ने उत्तर दिया—बेटी, तू सयानी हुई, अब बाहर निकलना ठीक नहीं है। तेरा विवाह होने वाला है। लोग क्या कहेंगे? अच्छा, आज जा।

दुलारी चुप थी। कैसा परिवर्त्तन! एक समय था कि दुलारी और ललित दिन-रात एक साथ खेला करते थे; और आज उसी ललित के साथ दुलारी को देखकर संसार हँसेगा!

दुलारी ललित के घर गई। कुछ देर तक ललित की माँ से बातें करती रही। फिर वह ललित के कमरे के पास गई। ललित पुस्तक पढ़ रहा था। दुलारी को देखकर उसने कहा—तुम आ गई! आओ।

दुलारी कमरे में बैठ गई। ललित भी कुर्सी पर से उतरकर बैठ गया। दोनों कुछ देर चुप थे। दोनों के हृदय में एक विचित्र भावना दौड़ लगा रही थी। ललित ने कहा—दुलारी, अगर मैं मर जाऊँ, तो तुम्हें दुःख होगा?

दुलारी ने कहा—छिः! ऐसी बात मुँह से न निकालो, तुमको क्या हो गया है?

कुछ भी तो नहीं—मुझे यह दुनिया अच्छी नहीं लगती।

क्यों ?

सो मैं ही जानता हूँ।

दुलारी बात को बदलना चाहती थी। वह समझ गई थी कि मेरे विवाह की बात सुनकर ही ललित के हृदय पर इतनी चोट लगी है। पूछा—आप कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे थे ?

कविता की एक पुस्तक है।

कविता क्यों पढ़ते हैं ?

दिल जलाने के लिए !

क्या कविता पढ़ने से दिल जलता है ?

हाँ—कुछ—

और अगर इसी तरह जले तो ?

तो कविता न पढ़े !

यह कहते हुए ललित हँसने लगा। दुलारी भी हँसने लगी। दोनों को अपने मन की बातों पर हँसी आती। ललित ने कहा—मैंने भी कविता का एक भाव सोचा है। इच्छा है कि एक कविता लिख डालूँ।

क्या भाव है, मुझे भी बतलाइये।

तुम सुनकर क्या करोगी ? दिल जलता है।

नहीं, सुनूँ भी तो।

मैंने सोचा है, एक प्रेमी संसार के झंझटों से ऊबकर अपनी प्रेमिका से कहता है—प्रिये ! इस कोलाहलमय संसार को छोड़कर चलो जहाँ प्रकृति का राज्य है—जहाँ मनुष्य न दिखलाई दें। उस

निर्जन प्रान्त में केवल दो ही व्यक्ति हों—हम और तुम। दोनों एक दूसरे को देखें! पर्वत के ऊपर एक कुटी हो—उसी में दोनों निवास करें।

क्यों दुलारी, उनका जीवन कितना सुखमय होगा?

हाँ, मगर संसार उन्हें जाने दे तब न?

संसार बड़ा निष्ठुर है!

प्रेम की कविता मत पढ़ा करो।

क्यों?

क्योंकि सूरदास ने लिखा है—प्रीति करि काहू सुख ना लह्यो!

जैसा तुम कहो।

दुलारी किसी भीषण चिन्ता में लीन हो गई। ललित ने कहा—दुलारी, चुप क्यों हो? क्या विचार कर रही हो?

कुछ नहीं—सोचती हूँ कि संसार में किसी को सुख नहीं है! मरना ही एकमात्र सुख है।

मरना......हाँ—ऐसा क्यों सोचती हो दुलारी?

तुम भी तो ऐसा ही सोचते हो ?

यह कहते हुए दुलारी जाने के लिए खड़ी हो गई। बोली—बहुत देर हो गई। अभी घर का काम करना है। अम्मा बिगड़ जायँगी।

अच्छा, जाओ—फिर कब मुलाकात होगी?

जब आप चाहेंगे।

मैं तो दिन-रात यही चाहता हूँ; मगर हत्यारा समाज ऐसा नहीं चाहता—

दुलारी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। चुपचाप चली गई।



अभी ललित को घर पर आये चार दिन भी नहीं हुए कि गाँव पर से कारिन्दा का पत्र लेकर नौकर आ पहुँचा—बड़े सरकार को दो दिन से ज्वर चढ़ा है, आप पत्र देखते ही चले आवें !

ललित बड़े विचार में पड़ गया। इतने दिनों पर घर आया था; उसकी जाने की इच्छा नहीं थी। किन्तु माँ के कहने पर वह चला गया। चलते समय दुलारी से भेंट भी न कर सका !

गाँव पर आकर उसने देखा, कल्याणसिंह को ज्वर चढ़ा था। चाचाजी के मस्तक पर हाथ रखते हुए पूछा—कैसी तबीयत है चाचाजी ?

कराहते हुए कल्याण ने कहा—तबीयत ठीक नहीं है। तुम्हारी चाल कब सुधरेगी ललित ! मेरी जिन्दगी का कोई ठीक नहीं है।

मुझमें कौन-सा अवगुण है, मुझे नहीं मालूम। आप बार-बार कहते हैं; किन्तु मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

तुम्हारी समझ में कैसे आवेगा ! मुझे भय है कि इतने परिश्रम से मैंने धन एकत्र किया है, उसे तुम रख नहीं सकोगे।

आपके विचार को मैं कैसे बदल सकता हूँ—यह कहते हुए, कुछ अप्रसन्न होकर, ललित वहाँ से उठ गया।

दुलारी की सूरत दिन-रात उसकी आँखों के सामने फिरा करती थी। अबकी बार दुलारी को छोड़ने का उसे हार्दिक कष्ट हुआ। परन्तु करता ही क्या !

कल्याणसिंह का ज्वर दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। अन्त में वैद्यों ने कह दिया, अब अच्छा होना कठिन है!

एक दिन, ललित की चाची ने कहा—बेटा, उनकी बीमारी बढ़ रही है, और तुम उनके पास बैठते तक नहीं। बुरे समय के लिए ही लोग लड़का-लड़की ईश्वर से चाहते हैं—सो उन्होंने तुम्हें अपने लड़के से बढ़कर समझा है। वह कहा करते हैं—मेरा न हुआ तो क्या, मेरे भाई का लड़का है—मेरे अब कौन है। हम लोगों के वंश में केवल तुम्हीं एक लड़का हो; तुम्हारे ही लिए उन्होंने इतना धन एकत्र करके रखा है। बेटा, सोचो तो, क्या तुम्हारा यही कर्तव्य है कि तुम उनकी खबर तक नहीं लेते?

ललित ने कहा—खबर क्यों नहीं लेता? अरे बुखार है, अच्छे हो जायँगे। इसमें घबड़ाने की क्या बात है?

यही कहते हुए वह चला गया।

  

सुखुआ बड़े परिश्रम से मजदूरी करता रहा। उसने कुछ रुपया भी जमा कर लिया था। सोचा—चलूँ, अब ठाकुर-साहब का रुपया दे दूँ।

रुपया लेकर चला। कल्याणसिंह के घर पर आकर देखा, उनकी दशा बड़ी खराब हो गई है। वह चारपाई पर मुँह ढाँके हुए पड़े थे। पूछा—सरकार, कैसी तबीयत है?

कल्याणसिंह उसकी तरफ देखते हुए बोले—तबीयत बहुत खराब है। हाँ···रुपया ले आया?

ले आया हूँ सरकार—कहते हुए उसने पचास रुपया सामने रख दिया।

कल्याणसिंह ने पूछा—कितना है ?

पचास।

और इस पचास का सूद ?

सरकार, इस पचास का भी सूद देना होगा ?

नहीं तो क्या ?

सरकार, कितना सूद हुआ ?

पाँच रुपया।

यह लीजिये।

रुपया देकर सुखुआ चला गया।

कल्याणसिंह की दशा बहुत खराब हो चली थी। देखते-देखते उनकी साँस जोर से चलने लगी। सब लोग घबड़ाने लगे। ललित का पता नहीं था। वह अपने किसी मित्र के यहाँ ताश खेलता रहा होगा। सबकी आशा छूट गई। लोगों ने समझा, अब ठाकुर-साहब नहीं बचेंगे। वह नेत्र बन्द किये हुए पड़े थे। एकाएक नेत्र खुले। पूछा—ललित कहाँ है ?

किसी ने उत्तर नहीं दिया। उस समय द्वार पर एक बूढ़ा फकीर अपनी खँजड़ी पर गा रहा था—

कंकड़ चुन-चुन महल बनाया,
लोग कहें घर मेरा जी !
ना घर मेरा, ना घर तेरा,
चिड़िया रैन बसेरा जी !

कल्याणसिंह के कानों में फकीर के मुँह से निकला हुआ एक-एक शब्द गूँज रहा था। उन्होंने फिर एक बार आँख खोलते हुए झुँझलाकर कहा—अरे ललित कहाँ है ?

उनका कारिन्दा वहीं बैठा था। उसने सोचा, कई बार ललित को पूछ चुके हैं, अब मैं क्या उत्तर दूँ। बोला—सरकार, बबाजी घर में नहीं हैं।

कहाँ है ?

मालुम नहीं। शायद बगीचे गये हों, या शिव-मंदिर के सामने अपने कमरे में हों।

उसे मेरी कुछ भी चिन्ता नहीं है—अच्छा, सुखुआ कहाँ है ?

वह तो गया।

उसे बुलाओ, और मन्नू आदि सभी असामियों को बुला भेजो, जिनके पास मेरा रुपया बाकी है।

बहुत अच्छा सरकार—कहते हुए कारिन्दा ने सबको बुलाने के लिए आदमी भेजा।

कुछ देर में सब आ गये। कारिन्दा ने कहा—सरकार, सब आ गये हैं। क्या हुक्म है ?

अबकी बार उनके नेत्र नहीं खुले। उनके हृदय में बड़ी उदासीनता थी—ललित के प्रति घृणा और अपनी तृष्णा पर पश्चात्ताप था। नेत्र बन्द किये हुए ही बोले—सुखुआ का रुपया वापस कर दो, और इन सब लोगों के कागज पर भरपाई लिख दो।

ऐसा क्यों करते हैं सरकार ?

नहीं, जो मैं करता हूँ, ठीक है—विलास और ऐश्वर्य में रुपया खर्च होने से अच्छा है कि इन गरीबों के घर रहे।

कारिन्दा ने सुखुआ का रुपया वापस कर दिया और सबके कागज पर भरपाई भी लिख दी। उसी समय ललित ने कमरे में प्रवेश किया। कुछ देर तक चुपचाप देखता रहा। फिर कारिन्दा से पूछा—यह क्या कर रहे हो?

सरकार की यही आज्ञा है।

क्या सबके रुपये मिल गये?

नहीं, सबको माफ कर दिया है और कागज वापस कर देने का हुक्म दिया है।

क्यों?

मैं नहीं जानता—उनकी इच्छा!

उन्मत्त के समान ललित अपने चाचा के पास गया। पूछा—चाचाजी, क्या आपने ऐसा हुक्म दिया है?

कुछ उत्तर नहीं मिला। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद ललित ने चादर हटाकर उनका मुँह खोला। उस समय उनके शरीर से निकलकर उनकी अतृप्त आत्मा सदैव के लिए इस तृष्णा-लोक को छोड़कर चली गई थी!

ललित को यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी उसके चाचा का अन्त हो जायगा। वह समझता था, साधारण ज्वर है, अच्छे हो जायँगे। उसे दुलारी के ध्यान के सामने कुछ अच्छा ही नहीं लगता था।

अपने चाचा के व्यवहार से ललित बड़ा दुखी था, और उसके

व्यवहार से भी कल्याणसिंह सदैव दुखी रहा करते थे। किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी सम्पत्ति से उसको घृणा हो गई। वह उस सम्पत्ति का मालिक बनना नहीं चाहता था।

कल्याणसिंह की मृत्यु के पश्चात् गाँव पर ललित का एक मास और बीत गया। क्रिया-कर्म के कारण ठहरना ही पड़ा। पर उसने अब अपने जाने के विषय में निश्चय कर लिया था। एक दिन, उसकी चाची ने कहा—बेटा, घर के काम-काज की तरफ अब तुम्हें ध्यान देना चाहिये।

मैं अब यहाँ रहना नहीं चाहता।

क्यों ?

मुझे ऐसा धन नहीं चाहिये !

ऐसा कौन इस संसार में है, जिसे धन का लोभ न हो ?

मैं धन लेकर क्या करूँगा ?

तब क्या तुम चले जाओगे ?

हाँ, कल जाने का निश्चय है।

तुम्हें यह उचित नहीं है ललित ! तुम्हारे लिए तुम्हारे चाचा ने क्या-क्या किया, सो तुम्हें मालूम नहीं है। तुम्हारे पिता की मृत्यु के बाद से ही वह तुम्हें अपने लड़के की तरह मानते थे। वह बड़े थे—अगर कभी तुमसे अप्रसन्न हो जाते थे, तो तुम्हारे ही भले के लिए। बड़ों की बातों का बुरा न मानना चाहिये। अब तो वह भी तुम्हें कहने वाले नहीं रह गये !

ललित ने कहा—मेरा मन यहाँ नहीं लगता। जमींदारी के काम से मुझे घृणा है। आप क्षमा करें।

जैसी तुम्हारी इच्छा—मेरा तो कोई वश है नहीं !

दूसरे दिन ललित अपने घर के लिए चल पड़ा।

५

वर्षा-ऋतु का आगमन था। शीतल मलय-पवन वृक्षों को थपकियाँ दे रहा था। दामिनी एक बार चमककर सघन आकाश में विलीन हो जाती थी।

घर आने पर ललित को मालूम हुआ कि दुलारी का विवाह हो गया—वह अपने पति के घर चली गई !

ललित के हृदय पर भयंकर आघात हुआ। जिस तरह एक खेलते हुए प्रसन्न बालक के हाथ से कोई उसका प्यारा खिलौना छीन ले, ठीक वही दशा ललित की हुई। वह अपने हृदय की व्यथा किससे कहता ! कौन सुनने वाला था ! संसार तो ऐसी बातों पर केवल हँसा करता है !

पूर्वकाल की स्मृतियों ने ललित के हृदय में अपना घर बना लिया था। उसे अब कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। संसार उसके लिए सूना हो गया था। अनेक भावनायें उसके हृदय में आतीं और चली जातीं। कभी वह सोचता—समाज का भीषण अत्याचार है। समाज के बन्धन के कारण आज दुलारी दूसरे की हो गई। उसको मैं चाहता था—यह मेरा अन्याय था। वह मेरी नहीं थी ! जिसकी थी, उसके यहाँ चली गई। मैं उसका कौन हूँ ? कोई नहीं, केवल बाल्यकाल का एक साथी !

ललित के नीरस दिन कटने लगे। चाचा की सम्पत्ति का त्याग

ही कर दिया था, पिता की बची हुई सम्पत्ति से ही निर्वाह करता था। उसने अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि अब विवाह नहीं करूँगा।

अपनी छिन्न-भिन्न हृदय-तंत्री लेकर कभी-कभी वह अतीत की रागिनियाँ बजाता—यही था उसका सुख, और इसी में उसका जीवन व्यतीत हो रहा था।

एक बार समस्त संसार के युद्ध में वह लड़ने को तैयार हो जाता, यदि उसे दुलारी मिल जाती। किन्तु अभाग्य! समाज का बन्धन अत्यन्त भीषण बन्धन है—जहर के प्याले से वह ज्यादा तीखा है—तलवार की चोट से भी ज्यादा दर्दनाक है! उसमें किसी का कुछ वश नहीं!

बहुत चेष्टा करने पर भी ललित दुलारी की मधुर स्मृति को अपने अन्तस्तल से हटा नहीं सकता था। दिन-पर-दिन वह प्रेम-चिन्ता से दुर्बल होता गया। उसका जीवन जाड़े के दिन की तरह भारी हो गया था।

एक दिन, ललित भोजन कर रहा था। उसकी माँ ने कहा—एक बात तुमसे कहना है ललित!

क्या बात है माँ?

मैं यह पूछती हूँ कि तुम इतने दुर्बल क्यों होते जा रहे हो? तुम्हें कौन-सी चिन्ता है? ईश्वर ने सब कुछ तो दिया है।

चिन्ता तो कोई नहीं है माँ—सोचता हूँ, क्या करूँ, मन नहीं लगता।

अपने घर का काम देखो बेटा, और तुम्हें क्या करना है। किसी

की नौकरी तो करना नहीं है। घर-गृहस्थी में लग जाओगे, तो मन लगेगा।

घर-गृहस्थी में क्या सुख है ? देखो न, चाचाजी ने इतना धन एकत्र किया, उसका उन्हें कौन सुख था ?

ललित की माँ कुछ देर तक उसकी तरफ देखती रही। फिर बोली—बेटा, मैं अकेली रहती हूँ, घर का सब काम-काज मुझे ही करना पड़ता है। इसी आशा में थी कि ललित बड़ा होगा—उसका विवाह होगा, तो बहू आवेगी, घर का सब काम करेगी। मगर तुम्हें न जाने क्या हो गया है कि तुम विवाह करना स्वीकार ही नहीं करते !

माँ, मैं सांसारिक बन्धन में अब नहीं पड़ना चाहता। लोग सुख के लिए विवाह करते हैं; किन्तु सुख उन्हें मिलता नहीं। घर की लड़ाई और झंझट में ही उनका जीवन कट जाता है। बिना देखे-सुने विवाह हो गया, चाहे आपस में प्रेम हो या न हो। इससे क्या लाभ ?

आज-कल के लड़कों के स्वभाव का ही पता नहीं लगता—न जाने कैसा विवाह तुम चाहते हो—मेरी समझ में नहीं आता ! हम लोगों में जो पहले से चला आता है, वैसा ही विवाह होता है।

ललित अपनी माँ से बहस करना नहीं चाहता था। फिर भी उसके मुँह से निकल पड़ा—प्राचीन काल में स्वयंवर होता था। इसी लिए स्त्रियाँ पतिव्रता और सदाचारिणी होती थीं; किन्तु अब धर्म के गूढ़ तत्व को कोई समझता ही नहीं। किसी तरह से विवाह हो गया—हो गया !

ललित ! तुम्हारा तो आर्य-समाजी मत है।

नहीं माँ, मेरा आर्य-समाजी मत नहीं है। मैं सनातन-धर्म को

अपने हृदय से मानता हूँ; किन्तु आज-कल सनातन-धर्म का पालन नहीं होता, धर्म के नाम पर अत्याचार होता है ! यही कारण है कि समाज का आज इतना पतन हो गया है।

बात करने में तो तुम बड़े निपुण हो—तुमसे बहस करना व्यर्थ है ! जो तुम्हारी इच्छा हो—करो।

माँ, तुम्हारी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है; किन्तु इस विषय में मुझे क्षमा करो—मैं विवाह कदापि नहीं करूँगा।

ललित का बहुत-सा समय चिन्ता और विचार-विवेचना में व्यतीत हो गया। अपने कई मित्रों के आग्रह से अब वह क्लब, थियेटर और बायस्कोप में भी सम्मिलित होने लगा। उसके सम्मिलित होने का मुख्य कारण यही था कि कुछ देर के लिए वह अपनी हार्दिक वेदना को भूल जाता था।

किन्तु धीरे-धीरे वह संसार की तरफ झुकने लगा। अब उसे अपने कपड़े की चिन्ता हुई। अच्छे-अच्छे 'सूट' बनने लगे। घर का कमरा भी अँगरेजी ढंग से सजाया गया। मित्र-मंडली भी एकत्र होने लगी। कभी-कभी होटल में सहभोज भी होता। उसमें मित्र उसे भी पकड़ ले जाते।

ललित को इन बातों से पहले घृणा थी। माता के धार्मिक जीवन ने उस पर कुछ प्रभाव डाला था। किन्तु वह प्रभाव, दौड़ने वाली धूप की तरह, हट गया। अब उसे दूसरे के हाथ का बनाया हुआ भोजन कर लेने में कोई संकोच नहीं होता था। मित्र-मंडल में प्रायः एक ही टेबुल पर सब लोग बैठकर भोजन करते थे। शराब की बोतल बीच में रख दी जाती। शीशे के गिलास भर दिये जाते।

एक साथ सब-के-सब हाथ में गिलास लेकर उन्हें आपस में टकराते हुए 'गुड-लक' करते।

ललित अभी तक इससे बचा हुआ था। वह चुपचाप बैठा देखा करता। उसे यों बैठा देख नशे में कभी-कभी देवनाथ बोल उठता—भाई, यह भी अजब मातमी शकल है। न जाने इसे कौन-सी चिन्ता लगी रहती है। मालूम नहीं, कौन-सा पहाड़ खोदना है। अरे मस्त रहो यार! चार दिन की जिन्दगी है, लूट के मस्ती लो, व्यर्थ हाय-हाय करते हो! देखने से मालूम होता है कि तुम किसी मृगनयनी के नयन-बाण से घायल हुए हो। क्यों दोस्त! कैसी कही?

ऐसा कहकर देवनाथ हँसने लगता। उसके हँसने में सब मित्र साथ देते। ललित बेचारा बुद्धू बन जाता।

उस दिन रविवार था—छुट्टी का दिन। सब एकत्र हुए। होटल पहुँचे। ललित नहीं जाता था; किन्तु अन्त में मिल-जुलकर सब पकड़ ही लाये।

एक ने कहा—आज ललित भी हम लोगों के साथ एक 'पेग' लेंगे।

दूसरे ने कहा—अरे यार! इसमें क्या दोष है जो तुम नहीं लेते? प्राचीन काल में बड़े-बड़े ऋषि तक पीते थे!

ललित ने कहा—मुझे इसमें कोई दोष नहीं दीखता; किन्तु नशा है—नशे से मनुष्य को बचना चाहिये। मुझे इससे घृणा नहीं है; पर जब तक बचा रहूँ, अच्छा है।

बीच ही में प्रोफेसर साहब बोल उठे—अँगरेजी-कवियों ने तो शराब की बेतरह प्रशंसा की है। आह! एक 'पेग' लेने के बाद

जब ऊपर देखे, तो संसार ही दूसरा मालूम पड़ता है !

देवनाथ उस मंडली का खिलौना था। कोई ऐसा न था, जो उसकी बातों से न हँस पड़े।

अभी सब बैठे थे। बोतल और गिलास सामने था। देवनाथ बोल उठा—भाई, मैं तो अब लेता हूँ। इतनी इन्तजारी सही नहीं जाती। आओ, आज सब मिलकर ललित का स्वास्थ्य-पान करें।

इतना कहकर उसने गिलास उठाया। सब पीने लगे। देव-नाथ गिलास रखकर सबकी तरफ देखने लगा। बोला—क्यों सन्तू बाबू! किस अदा से—हाँ, 'मैं का जानूँ राम' !

सन्तू धीमे स्वर में गुनगुनाने लगे—'मैं का जानूँ राम' !

सब एक साथ बोल उठे—वाह-वाह ! गजब कर डाला !

ललित भी हँस रहा था। देवनाथ बोल उठा—लो यार ललित ! इसी बात पर एक 'पेग' जमाओ। रोज-रोज तुम्हारा नखरा अच्छा नहीं लगता। अच्छा, तुम्हारे लिए 'शेम्पियन' मँगवाता हूँ—वह हल्का है, ज्यादा नशा नहीं करेगा। क्यों, बोलो ?

ललित ने उत्तर दिया—मुझे कोई संकोच नहीं है, मैंने पहले ही कह दिया था। अगर तुम लोगों की ऐसी इच्छा है कि मैं ले लूँ, तो जैसा कहो, वैसा करूँ।

सबने मिलकर कहा—मेरे लिए आपको अवश्य पीना चाहिये। इससे गम दूर हो जाता है! इससे बढ़कर दुनिया में कोई चीज नहीं है !

ललित के मन में बहुत दिनों से इच्छा थी। आज सबका अनुरोध देखकर उसने यह सुअवसर हाथ से जाने न दिया—सबके

साथ पीना आरम्भ किया। मित्र-मंडल में सब प्रसन्न थे। उन लोगों की प्रसन्नता वैसी ही थी, जैसी किसी हिन्दू को मुसलमान बना लेने पर मुसलमानों को होती है।

देवनाथ ने लड़खड़ाई जबान में कहा—ललित! अब तुम हम लोगों के मजहब में आ गये। अब कुछ दिनों में पक्के हो जाओगे।

ललित ने इतना ही कहा—आपकी कृपा है।

ललित को आज विशेष आनन्द आया। वह अपने मन में विचार करने लगा—ओह! कितनी उत्तम वस्तु है! इसे आज तक मैं बुरा समझता था; किन्तु इसमें वस्तुतः स्वर्गीय सुख है! भला इसमें दोष ही क्या है? दुनिया अंधी है—उसे इस सुख का क्या ज्ञान है?

होटल से सब उठ गये। अपनी-अपनी गाड़ी-मोटर पर सवार हो रहे थे। देवनाथ ने कहा—क्यों भाई, अब क्या इरादा है, क्या अब इसी तरह घर चला जाय?

मंडली के नायक सन्तू बाबू थे। वह बड़े धनी आदमी थे। मंडली में उन्हीं का प्रायः सब खर्च होता था। उन्होंने कहा—जहाँ तुम कहो चचा, वहीं चला जाय।

मेरी तो राय है कि रंग-पानी देकर इस तरह घर जाना व्यर्थ है। सब लोग चलो कहीं गाना सुना जाय, कुछ देर मस्ती आवे, और क्या!

इस प्रस्ताव का कई लोगों ने अनुमोदन किया। सन्तू बाबू ने पूछा—कहाँ चलोगे?

देवनाथ ने कहा—आज-कल 'चम्पा' के यहाँ एक बड़ी सुन्दर

चिड़िया है, निहायत्त हसीन है ! मेरी तो राय है, उसी के यहाँ सब चलें ।

निश्चय हो गया । सब चल पड़े ।

रात्रि का समय था । रूप का हाट सज चुका था । बाजार में शौकीन लोग आ जा रहे थे । वेश्यायें अपनी खिड़कियों पर बैठकर नयन-बाण चला रही थीं । किसी अच्छे शिकार को वैसे ही देखती थीं, जैसे जजमान को तीर्थ के पंडे देखते हैं !

देवनाथ ने कहा—देखो, यही है—इसी मकान में ।

सबकी दृष्टि ऊपर चली गई—हाँ, अच्छी तो है, नई मालूम पड़ती है !

अच्छा चलो—यह कहते हुए संतू बाबू भीतर घुस गये । सब लोग उन्हीं के साथ मकान में चले गये ।

ललित नशे में था । वह भी अपनी तरंग में वेश्या के घर चला गया । आज उसका यह प्रथम अवसर था । उसका हृदय धक-धक कर रहा था । उसे किसी का भय नहीं था, फिर भी न जाने क्यों, उसकी आत्मा उसे बार-बार धिक्कारती थी । उसने अपने को बहुत-कुछ सँभाला । नशा धीरे-धीरे उतर रहा था ।

सबके जाते ही चम्पा, किशोरी और वीणा स्वागत के लिए खड़ी हो गईं । सब लोग बैठ गये । देवनाथ ने वीणा की तरफ एक टक देखते हुए पूछा—आपका नाम क्या है ? आप यहाँ कब आई हैं ?

वीणा ने मस्तक नीचा कर लिया । बीच ही में चम्पा बोल उठी—इनका नाम 'वीणा' है । इनको यहाँ आये दो मास से ऊपर हो गया ।

पान आया। कुछ देर तक सब चुप थे। देवनाथ ने कहा—अरे भाई, क्या यह मन्दिर है जो सब ध्यान लगाकर आराधना कर रहे हो ? अरे बोलो मनहूसो, कुछ तो बात करो।

यह कहते हुए हँसाने की जादू-भरी निगाह से उसने सबकी तरफ देखा। सब-के-सब खिलखिला पड़े। वेश्यायें भी हँस पड़ीं।

देवनाथ ने अपने जीवन का अधिकांश समय केवल भोग-विलास की आराधना में बिता दिया था। सब-कुछ खो चुका था। अब उसके पास केवल भोजन और वस्त्र भर के लिए कुछ बच गया था। लड़का-बाला कोई नहीं—सब अभागे संसार छोड़कर चले गये थे। वह शराब से ही अपने दुख को फटकारे रहता। मित्र-गोष्ठी में उसकी सूरत देखकर ही सब हँस उठते थे। दिल्लगी में तो उससे कोई जीत ही नहीं सकता था। बिलकुल बेफिक्र आदमी—खुद प्रसन्न रहता और दूसरों को भी प्रसन्न रखता। यही उसका एकमात्र सिद्धान्त था।

उसने धीरे से जेब में पड़ी बोतल निकाली, और ढालना शुरू कर दिया। सब आश्चर्य से उसकी तरफ देखने लगे। सन्तू बाबू ने कहा—अबे यह क्या कर रहा है ?

चुप रहो यार ! बोलो मत, नशा ढीला पड़ गया था। तुम लोगों की सूरत अच्छी नहीं लगती थी, इस लिए ले लिया। माफ कीजियेगा चम्पाबाई !

नहीं-नहीं, कोई हर्ज नहीं, आप शौक से लें।

(बोतल की तरफ दिखाते हुए) 'आपको' भी तो लेना चाहिये ?

नहीं, आप ही को मुबारक हो।

जैसा तुम कहो। अच्छा, अब कुछ गाना-बजाना होना चाहिये। आज तो 'वीणा' का गाना सुनने की इच्छा है।

सबकी राय हो गई। देवनाथ ने ललित की तरफ देखा, वह चुप था—कभी-कभी वीणा की तरफ देख लेता था। देवनाथ ने उससे कहा—तुम भाई किस्मतवर हो! क्या वीणा के ऊपर जादू कर रहे हो? वह बार-बार तुम्हारी ही तरफ देख रही है।

वीणा लज्जित हो गई। ललित मुस्कुरा रहा था।

कुछ देर में गाना शुरू हुआ। वीणा एक गजल गा रही थी—

ऐ दर्द-दिल बता दे,
कब तक तू कम न होगा।

वीणा अभी गाने की तालीम पा रही थी। उसने थोड़े ही दिनों में बहुत-कुछ सीख लिया था। उसमें अभी हाव-भाव और चंचलता नहीं थी। उसके पास था—हृदय!

ललित उस दर्द-भरी तान में वीणा की मर्म-वेदना का अनुभव कर रहा था। वह कुछ पूछना चाहता था—उसका हृदय आकर्षित हो रहा था; किन्तु लज्जा और संकोच से उसे साहस नहीं होता था, और खासकर ऐसे अवसर पर, जब कि देवनाथ वहीं बैठा था।

गाना समाप्त हुआ। सब लोग अपने-अपने घर चले गये। ललित को एक नई बला लग गई। वह विचार करता हुआ अपने घर पहुँचा। लाल-लाल उसकी आँखें और उसका उतरा हुआ मुँह देख कर उसकी माँ ने पूछा—ललित, आज ऐसे सुस्त क्यों हो?

कुछ नहीं माँ, मित्रों ने भंग पिला दी थी।

भाँग न पिया करो बेटा!

मैं कभी नहीं पीता। सिर्फ उन लोगों के कहने से आज थोड़ी पी ली है!

तो ऐसे आदमियों का साथ क्यों करते हो?

ललित कुछ न बोला। भोजन करके चुपचाप अपनी शय्या पर सो गया।

६

ललित अपने कमरे में बैठा था। उसकी माँ पुकार रही थी—ललित! क्या कर रहा है?

कुछ नहीं माँ।

आज एक बड़े दुख की बात सुनी है बेटा!

कौन-सी बात माँ?

सुना है, दुलारी का पति मर गया—कई महीना हो गया!

ललित अवाक् रह गया! दुलारी के कष्टों का ध्यान करके उसने कलेजा पकड़ लिया! पूछा—आज-कल तो दुलारी की माँ भी नहीं दिखाई देती।

वह बेचारी तीर्थयात्रा करने चली गई है—यह खबर सुन कर तो वह पागल हो जायगी!

ललित ने एक आह भरकर कहा—ईश्वर की लीला समझ में नहीं आती!

दुलारी का सहायक अब सिवा ईश्वर के कौन है! बेचारी की गोद में एक वर्ष का बालक भी है!

ललित ने आश्चर्य से पूछा—क्या एक लड़का भी है?

हाँ, सुना तो है, एक लड़का भी है !

इतना कहकर माँ अपने गृहस्थी के काम-काज में लग गई। ललित बैठा विचार करने लगा—संसार कितना परिवर्त्तनशील है ! देखते-देखते दुलारी का विवाह हो गया—बालक उत्पन्न हुआ, पति की मृत्यु भी हो गई !

ललित को मालूम होता कि खेल-कूद के दिन बीते थोड़े ही दिन हुए—दुलारी का गुड़ियों के साथ खेलना मानों कल ही की बात है !

ललित अब दुलारी के ध्यान से दूर ही रहने की चेष्टा करता। कारण, उसका जीवन दुलारी की आराधना में नष्ट हो चुका था। अब उसने संसार के कोलाहलमय जीवन में पदार्पण किया था। कितनी बार उसने निश्चय किया कि आत्महत्या कर लूँ, किन्तु प्रेम में प्राण दे देना सहज काम नहीं है। अन्त में उसने संसार में सदैव प्रसन्न और सुखी रहकर दिन बिताने का निश्चय कर लिया।

दुलारी का शोकपूर्ण समाचार सुनकर ललित कई दिनों तक घर से नहीं निकला। कितनी बार सोचता—अब दुलारी के सम्बन्ध में कभी विचार न करूँगा; किन्तु लाख ऐसा सोचने पर भी वह अपने ध्यान को दुलारी की ओर से हटा नहीं सकता था।

कभी-कभी ललित का हृदय वीणा की तरफ खिंच जाता। उस दिन से प्रायः अवसर पाकर वह वीणा को देखने जाता। वीणा अपनी खिड़की से ललित की तरफ परिचित की भाँति देखती। ललित के शान्त भाव और उदास मुखड़े ने उसके हृदय पर बड़ा

असर किया। ललित जब उसको देखता, तो उसकी बड़ी इच्छा होती कि वीणा के यहाँ जाय, किन्तु साहस न होता था। एक दिन, बड़ा साहस करके ललित उसके मकान में गया। चम्पा समझ गई कि यह वीणा के लिए ही आये हैं—उसने झट वीणा की तरफ संकेत किया।

वीणा ने और वेश्याओं की तरह हाव-भाव न दिखाकर सरलता-पूर्वक बड़े मधुर शब्दों में कहा—बैठिये।

ललित बैठ गया। उसका माथा सन-सन कर रहा था। क्या बात करना चाहिये, यह उसे सूझ न पड़ता। चम्पा और किशोरी उस कमरे से हट गई थीं। वीणा ने बड़ी नम्रता से कहा—आज अहोभाग्य जो आपका यहाँ पर आगमन हुआ!

यों ही तुम्हारा गाना सुनने के लिए चला आया। घर पर तबीयत नहीं लगती—तुम्हारा गाना सुनने से कुछ मन बहल जाता है—कुछ देर के लिए अपने दुःखों को भूल जाता हूँ।

वीणा ने ललित की बातों में विशेषता पाई। वह अपने मन में विचार करने लगी—मैं इतने दिनों से यहाँ आई हूँ, मगर इस तरह साफ बात करने वाला नहीं देखा!

सोचते हुए ही उसने पूछा—क्या आपको भी कोई दुःख है?

संसार में कौन ऐसा है, जिसे दुख न हो? हाँ, किसी का दुख ऐसा होता है, जो कुछ दिनों में हट जाता है; किन्तु मेरा दुख मेरे जीवन के साथ जायगा।

वीणा ने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—दुख का ध्यान करने से ही दुख बढ़ता है।

ललित एक टक वीणा की तरफ देख रहा था। कहा—वीणा! तुम्हारी बातों से मालूम पड़ता है, तुम भी इस संसार की सताई हुई हो।

सताई हुई नहीं, यों कहिये कि संसार की ठुकराई हुई एक अनाथ—और अब एक वेश्या—हूँ!

अभी बात हो ही रही थी कि संगीत के आचार्य लोग साज़-सारंगी लेकर पहुँच गये। वीणा ने गाना आरम्भ किया।

कुछ देर तक गाना होता रहा। अन्त में ललित ने कहा—अब समय हो गया है, मैं जाना चाहता हूँ।

वीणा एक गजल का राग गुनगुना रही थी। बोली—इसको सुनकर चले जाइयेगा।

ललित मुग्ध होकर सुन रहा था। उसकी अन्तिम पंक्ति उसे बहुत चुभी—

> हम रहे सफदर कफस में हो चुकी फसले बहार।
> हसरते गुल रह गई, शौके तमन्ना रह गया॥

गाना सुनकर वह घर चला आया।

  

अब ललित में वीणा के यहाँ जाने का साहस हो चला था! दो दिन बीत गया, वह वीणा को देखे बिना न रह सका। दिन-भर इसी विचार में लीन रहा कि आज रात को वीणा के यहाँ अवश्य चलूँ। वीणा की मधुर मुस्कान उसे अपनी तरफ खींच रही थी। वीणा के वार्तालाप से उसके जीवन में कुछ रहस्य और नवीनता मालूम हुई।

रात्रि का समय हुआ। ललित अकेला वीणा के यहाँ गया।

वीणा भी अकेली बैठी थी। किशोरी और चम्पा किसी महफिल में गाने गई थीं। ललित ने कहा—आज और लोग कहाँ हैं?

एक जगह गाने गई हैं।

तो तुम अकेली हो?

जी हाँ—बैठिये!

ललित बैठ गया। वीणा ने अपने हाथ से पान लगाकर ललित को दिया। ललित उसे प्रेम से लेकर खा गया। बोला—वीणा! न जाने क्यों, तुम्हारा हाल जानने के लिए मुझे बड़ी उत्कंठा होती है। तुम्हारी आँखें कहती हैं कि तुम्हारा जीवन बड़ा रहस्यमय है। अन्य वेश्याओं की बातों में और तुम्हारी बातों में मुझे बड़ा अन्तर मालूम पड़ता है।

मेरी कहानी बड़ी विचित्र है। मैं संसार से ठुकराई हुई हूँ। उसे जानकर आप प्रसन्न नहीं होंगे। इसलिए उसकी चर्चा ही व्यर्थ है। आप उसे न सुनें।

आज बड़ी सुहावनी रात है वीणा! और फिर ऐसी रात, जब कि यहाँ कोई नहीं है! ऐसा अवकाश फिर कभी नहीं मिलेगा। क्या तुम अपनी कहानी मुझे न सुनाओगी? वीणा! मैं भी संसार का सताया हुआ हूँ।

संसार-चक्र कैसा परिवर्त्तनशील है! मैं जब अपने बीते दिनों की याद करती हूँ, तो मेरा हृदय फटा जाता है। क्या मैं कभी स्वप्न में भी विचार करती थी कि एक दिन मुझे इस तरह अपने रूप का ग्राहक खोजना पड़ेगा! ओह! हमारा जीवन कितना पापमय हो रहा है!

वीणा ने अन्तिम वाक्य रुँधे कंठ से कहा।

ललित ने ढाड़स देते हुए कहा—संसार बड़ा विचित्र है वीणा! यहाँ रहकर सभी को कष्ट उठाना पड़ता है। कौन जानता है कि उसका जीवन सदैव एक-सा रहेगा।

वीणा ने अपनी राम-कहानी कहना आरम्भ कर दिया—

मैं बड़े प्यार से पाली गई थी। अपने पिता की एक ही सन्तान होने के कारण मैं बड़ी प्यारी थी। मेरे पिताजी मुझे पढ़ाया करते थे। मैं बराबर रामायण और सुखसागर पढ़कर अपनी माँ को सुनाया करती थी। मेरे पिता की वृद्धावस्था थी। उनकी वकालत भी अच्छी तरह नहीं चलती थी। किसी तरह घर का खर्च निकल आता था। लेन-देन में बहुत-सा रुपया डूब गया था।

वीणा अभी बोल ही रही थी कि ललित ने आश्चर्य से कहा—तुम्हारे पिता क्या वकील थे?

जी हाँ!

हाँ, तब फिर?

जब मैं चौदह वर्ष की हुई, मेरे विवाह के लिए मेरे पिता बड़े चिन्तित हुए। कारण, धन का अभाव! विवाह में कम-से-कम पाँच हजार की आवश्यकता थी। मुझे सयानी देखकर उन्हें बड़ा दुख होता था। पर कोई साधन न था। यदि सुयोग्य वर ढूँढा जाता, तो दहेज चार-पाँच हजार से कम की माँग न होती। दिन-पर-दिन लोग पिताजी की निन्दा करते। कहते—इतनी सयानी लड़की का विवाह नहीं करते!

समाज बड़ा अत्याचारी है वीणा ! इस समाज के कारण न जाने कितने मनुष्यों का जीवन नष्ट हो जाता है ।

वीणा और साहस के साथ कहने लगी—अन्त में बाबूजी ने अपना मकान रेहन रक्खा और शीघ्र विवाह कर देने का निश्चय कर लिया । मेरे खेल के दिन बीत चुके थे । कुछ दिनों के बाद, शुभ लगन में मेरा विवाह हो गया ।

ललित को दुलारी की बातें सामने दीख पड़ने लगीं । पूर्वकाल की स्मृतियों ने कुछ देर के लिए उसके हृदय में दर्द पैदा कर दिया । पूछा—तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ वीणा ?

लखनऊ में । मैं कानपुर की रहने वाली हूँ ।

तुम्हारी बोलचाल भी उसी तरफ की मालूम पड़ती है ।

अपने जन्मस्थान की भाषा भला कैसे भूल सकती है ।

हाँ, तब, विवाह होने के बाद क्या हुआ ?

दूसरे ही दिन मुझे पति-गृह जाना था । उस दिन रात-भर मैं रोती रही । दूसरे दिन सबेरे ही मैं अपनी माँ से बिदा हुई । वह दृश्य मुझे नहीं भूलेगा । आह ! सुख के संसार से मैं उसी दिन निकाल दी गई ! चलते समय माँ ने कहा था—वीणा ! संसार में केवल पति को ही अपना समझना । कभी स्वप्न में भी उसका अनादर मत करना । वही तुम्हारा ईश्वर, वही तुम्हारा सर्वस्व और वही तुम्हारा जीवन-धन है । हम हिन्दू-अबलाओं का यही धर्म है कि अपने पति के लिए प्राण तक न्योछावर कर दें ।

वीणा कहती ही चली गई—मेरे पति स्कूल में मास्टर थे । घर में मेरे पति, ससुर और सास थीं । एक छोटी-सी गृहस्थी थी ।

घर में मेरा बड़ा मान भी था। मुझसे सब प्रसन्न रहते थे। यहाँ तक कि पड़ोस की स्त्रियाँ भी प्रशंसा करती थीं। मेरे पति का भी मुझ पर प्रगाढ़ प्रेम हो गया।

ललित वीणा की तरफ देख रहा था। वीणा ने पान का डब्बा खींचते हुए कहा—आपके लिए पान लगा दूँ।

नहीं, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम अपना हाल कहो।

वीणा पान बनाते हुए कहने लगी—मुझे किसी तरह का कष्ट नहीं था। हाँ, जब माता-पिता की याद आती, तो मैं एकान्त में बैठकर आँसू बहाती। बाल्य-जीवन की घटनायें याद पड़ जातीं, और कुछ देर के लिए मैं विकल हो उठती। मेरी दशा उस पक्षी की तरह हो रही थी, जो आकाश में अपना मार्ग भूलकर दूसरे पक्षियों के दल में मिल गया हो। धीरे-धीरे मेरा स्वभाव उन्हीं लोगों से मिलता गया। यह मेरे पति के हार्दिक स्नेह का कारण था।

कहते-कहते वीणा का गला भर आया। एकाएक पान बनाने से हाथ रोककर बोली—इसी तरह दो वर्ष बीत गये। सन्ध्या के चार बजे थे, पतिदेव स्कूल से पढ़ाकर लौटे थे। उस दिन वह बड़े उदास थे। मैंने कहा, जलपान कर लीजिये। किन्तु वह बड़ी ही करुण दृष्टि से मेरी तरफ देख रहे थे—जैसे उन्हें कुछ कहने का साहस ही न होता था। फिर मैंने पूछा, आज आप इतने उदास क्यों हैं? उन्होंने कहा, क्या कहूँ, बड़ा दुखमय समाचार है वीणा! मैंने आश्चर्य से उनकी ओर देखते हुए पूछा, सो क्या? वह चुप हो गये। फिर एक पत्र निकालकर मेरे सामने रख दिया। मैं पत्र पढ़ने लगी। मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा! मैं फूट-फूटकर रोने लगी।

उस पत्र में मेरे पिता की मृत्यु का समाचार था। पतिदेव मुझे ढाड़स दे रहे थे। मैं रोते-रोते बोली, मुझे आप माँ के पास पहुँचा दीजिये। बस दूसरे ही दिन छुट्टी लेकर उन्होंने मुझे माँ के पास पहुँचा दिया।

इतना कहकर वीणा ललित को पान देने लगी। ललित ने पान लेते हुए कहा—हाँ, फिर ?

मुझे देखकर मेरी माँ की दशा और खराब हो गई। वह विलाप करने लगी। सब बातें बदल गईं थीं। सुख के दिन चले गये थे। जिस कमरे में बैठकर मेरे पिता मुझे पढ़ाते थे, उसे देखकर मैं पागल हो उठी। उनकी पुस्तकें बिखरी पड़ी थीं। मैंने अपनी माँ को समझाया—माँ, मैं तो हूँ, तुम घबराती क्यों हो ? किन्तु उसने कहा—बेटी, तुम मेरे किस लायक हो ? लड़की दूसरे की हो जाती है, उस पर अपना क्या वश है !

वीणा रुकी नहीं। ललित बड़ी उत्सुकता और तन्मयता से उसकी बातें सुन रहा था—मैंने अपने पति से अनुरोध किया। वह मुझे एक मास रहने की आज्ञा देकर चले गये। मेरी माँ बहुत दुर्बल हो गई थी। उसकी हड्डी-हड्डी दिखलाई देती थी। धन का अभाव था। रो-रोकर दिन कटता था। मेरे विवाह के ऋण ने सर्वनाश कर दिया था। मैं नित्य अपनी माँ को सांत्वना देती। इसी तरह दो सप्ताह बीत गये। फिर तो एक ऐसी घटना हुई, जिसके कारण आज मेरी यह दशा हो रही है।

इतना कहकर वीणा चुप हो गई। ललित ने आश्चर्य से उसकी तरफ देखते हुए पूछा—कौन-सी घटना हुई वीणा ?

एक दिन मैं खिड़की के पास बैठकर किरोशिया की बेल बुन रही थी। मैंने देखा, नीचे कई मुसलमान-नवयुवक खड़े—मेरी तरफ संकेत करते हुए—आपस में कुछ बातें कर रहे थे। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। किन्तु मेरी तरफ देखते हुए एक ने तीव्र कंठ से कहा, 'इस सादगी पर कौन न मर जाय ऐ खुदा'! मैं समझ गई कि ये आवारे मुसलमान हैं। मैंने खिड़की को बन्द कर दिया। फिर कई दिन देखा, वे लोग मेरे मकान के सामने मँड़लाया करते थे। उन्हीं दिनों हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा आरम्भ हुआ था। मैं असहाया होने के कारण डरी। अपनी माँ से यह हाल कहा। वह बोली—बेटी, खिड़की बन्द रखा करो, ये मुसलमान बड़े दुष्ट हैं।

ललित उन्मत्त के समान बीच ही में बोल उठा—दुष्टता की तो उन्हें शिक्षा ही दी जाती है, और कुछ उनका स्वभाव भी ऐसा होता है। तब क्या हुआ, वीणा?

कई दिन बाद, रात में, मैं अपनी माँ के पास ही सोई थी। एकाएक कई आदमी कमरे में घुस आये। अचानक मेरी आँखें खुलीं, तो देखा, वही मुसलमान-नवयुवक थे। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। तत्काल उन लोगों ने अपने हाथ में छुरा चमकाया। मैं डर गई। दो नवयुवक तो मेरी माँ के मुँह में कपड़ा ठूसने लगे, और दो मुझे बाँधते हुए उठाने लगे। भय से मैं काँप रही थी। अन्त में एक ने कहा, अब चलो। मेरी माँ को अच्छी तरह बाँधकर एक कमरे में बन्द कर दिया, और मेरे मुँह में भी कपड़ा ठूस दिया। मेरा दम घुटने लगा। आखिर सब मिलकर मुझे उठा ले गये। कुछ

दूर जाकर एक अँधेरी झोपड़ी में पहुँचे। वहीं मुझे रखा। वे लोग भी भय से चारों तरफ देख रहे थे। कारण, मेरे शहर के हिन्दू अधिक बलवान थे। अन्त में उन लोगों ने मुझे बहुत डरा-धमका कर मुसलमान हो जाने के लिए खूब समझाया। फिर ताले में मुझे बन्द करके चले गये। उनके चले जाने पर मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगी। सवेरा होने वाला था। कुछ लोग अपने-अपने घर से निकले। मैंने पुकारकर कहा, प्राण बचाओ! लोगों ने दरवाजा तोड़ डाला। उन्हीं लोगों की कृपा से मैं घर पहुँची। पुलिस में रिपोर्ट भी की गई; पर कुछ लाभ न हुआ। अन्त में समाज कहने लगा कि मैं विधर्मिणी हो गई। मेरे लिए अब समाज में कोई स्थान न रहा। मेरी माँ के ऊपर जो बीत रहा था, उसे वही समझती थी। उसका हृदय फटा जाता था। अन्त को मेरे पति के पास तार दिया गया। वह आये। सब समाचार सुन कर बोले—प्यारी वीणा! मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता, चाहे समाज मुझे छोड़ दे। तुम्हारे चरित्र पर मुझे अटल विश्वास है।

क्रोध से उनकी आँखें लाल हो रही थीं। वह कहते ही रहे—यदि आज उन मुसलमानों को मैं देख लूँ, तो उनके प्राण ले लूँ। कायर समाज उनसे बदला लेने का साहस नहीं रखता! वह उलटा अपने ही ऊपर अत्याचार करता है! बहिष्कार और अधर्म के नाम पर तिरस्कार करना ही समाज का एकमात्र कार्य रह गया है। इसी लिए आज हिन्दुओं का भीषण पतन हुआ है!

इतना कहकर वीणा एक गहरी आह खींचकर रुँधे कंठ से बोली—मेरी माँ के आँसू आँखों में ही सूख जाते थे! रोते-रोते उसकी बड़ी

बुरी दशा हो गई थी। ईश्वर ही उसका सहायक था। विपत्ति के दिन बड़े भयानक होते हैं। किन्तु मेरे पति का मुझ पर विश्वास था। वह देवता थे। मेरे भाग्य में यह दुर्दिन देखना था !

ललित ने वीणा के प्रति सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—आज-कल देश में मुसलमान लोग खूब अत्याचार कर रहे हैं। उनमें एकता है। हिन्दू आपस में ही कलह करते हैं। मैंने कितनी बार हिन्दुओं के मेले में मुसलमानों को देखा है। वे हिन्दू स्त्रियों की तरफ देखते और हँसते चले जाते हैं; मगर उन्हें कुछ कहने वाला कोई नहीं है। हाँ, अच्छा तब फिर तुम अपने पति के साथ चली गई कि नहीं ?

हाँ, उसके बाद, मेरे पति मुझे अपने साथ ले गये। लोग हँसते थे, उन्हें धिक्कारते थे। किन्तु उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। घर पर पहुँचने पर उनके माता-पिता यह समाचार सुनकर बड़े क्रोधित हुए। कहने लगे—तुम बड़े अधर्मी हो गये हो, वीणा के हाथ का भोजन कौन करेगा ? अब दूसरा विवाह कर लो, उसे रख कर हम लोग जाति में नहीं रह सकते, समाज यह कभी स्वीकार नहीं करेगा, यह तुम्हारा अन्याय है—इत्यादि।

मेरे पति चुपचाप यह सब सुनते रहे। कारण, अपने पिता का वह बड़ा मान करते थे। किन्तु उनकी ऐसी बात सुनकर उन्हें घृणा हो गई। उन्होंने बड़े साहस से कहा—बाबूजी, वीणा का यदि वास्तव में दोष होता, तो मैं उसे कदापि ग्रहण न करता। किन्तु मैं जानता हूँ, वह निर्दोष है। तब मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ ? वह अनाथ अबला कहाँ जायगी ?

इस पर उनके पिताजी ने उत्तर दिया—कुछ भी हो, वीणा समाज में कलंकित हो गई है, मैं तो उसके हाथ का बनाया भोजन नहीं करूँगा। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो; आज-कल के लोगों में कहाँ धर्म-कर्म देख पड़ता है!

किन्तु सबकी बातें अनसुनी करके मेरे पति अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। मेरे हाथ का बनाया भोजन घर में कोई न करता; पर वह उसे अवश्य खाते थे। उनकी दशा देखकर कभी-कभी मुझे बड़ा दुःख होता। मुझे स्वभावतः अपने जीवन से घृणा हो गई; क्योंकि समाज ने उनका बहिष्कार कर दिया। घर के लोगों ने—स्वयं माता-पिता ने—साथ नहीं दिया। उनका जीवन बड़ा दुःख-मय हो गया। घर में मेरा बड़ा निरादर होने लगा। लोग मेरी तरफ देखने में भी पाप समझते थे। पड़ोस की स्त्रियों में भी मेरा मान न रहा। मेरा जीवन एक प्रकार से भार हो गया। अन्त में, बहुत विचार करने के पश्चात्, मैंने 'अनाथ-नारी-सदन' के मंत्री के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसमें अपना सब हाल लिखा।

ललित ने एकाएक पूछा—तुमने ऐसा क्यों किया वीणा? तुम्हारे पति ने जब—तुम्हारे लिए इतना कष्ट सहन करने के बाद भी—तुम्हारा त्याग नहीं किया, तब तुम्हारा यह अन्याय था।

नहीं, मैंने अपने मन में समझा कि मेरे कारण ही उन्हें दुख हो रहा है; अतएव मैं ही न रहूँ, तो सब ठीक हो जायगा। पहले की सब बातें बदल गई थीं। सुख के बदले एक झंझट पैदा हो गई थी। मेरा और उनका—दोनों का—जीवन नष्ट हो रहा था। किन्तु हाँ, मैं यह स्वीकार करती हूँ कि वह मेरी भूल थी, और उसी भूल

के कारण आज मुझे वेश्यावृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। पर मैं करती ही क्या? विवश थी! मुझे ऐसा करना ही पड़ा। कारण, उनको भी अब मेरा कम ध्यान रहता। मेरा पक्ष लेकर यदि वह कुछ बोलते, तो संसार हँसता कि देखो, अपनी स्त्री का भक्त है! घरेलू झगड़ों के कारण प्रेम का तूफान भी शान्त हो चला था। हृदय बदल रहा था। मुझे कटु वचन सहने का अभ्यास नहीं था! अतएव किसी की बात की मेरे हृदय पर बड़ी चोट लगती। मैं सहन न कर सकती—और कभी-कभी उत्तर दे बैठती थी। अतएव घर में बड़ा कोलाहल मच जाता था। पाठशाला से जब वह लौटकर आते, तो उनके माता-पिता उन्हें बड़ा धिक्कारते और मेरी घोर निन्दा करते। इसी से उनका भाव मेरी तरफ से बदला जा रहा था। मैं समझने लगी कि इनका अब पहले-जैसा प्रेम नहीं है। इसी लिए मैंने वह पत्र लिखा था।

वीणा इतना कहकर इधर देखने लगी—उसी समय उसे संगीत की शिक्षा देने वाला उस्ताद आ गया। वह चुप हो गई।

बाबूजी, सलाम—कहकर वह उस्ताद सामने बैठ गया। ललित कुछ देर तक चुप था। अन्त में उस्ताद ने पूछा—आज गाना नहीं सुनेंगे क्या?

नहीं—कहकर ललित ने दो रुपया उसके हाथ में देते हुए कहा—इस समय जाओ, बात कर रहा हूँ। वह चला गया।

वीणा को न जाने क्यों, आज अपनी कहानी सुनाने में बड़ी प्रसन्नता होती थी—एक तरह का बोझ उसके हृदय पर से हल्का होता जा रहा था। वह बड़े उत्साह से कहने लगी—कई सप्ताह बीत गये, उस दिन बड़ा सुन्दर दृश्य था। आकाश के नीले पट पर

मेघ छा गये थे। वायु का एक झोंका बूँदों को अपने साथ उड़ाये लिये जाता था। पास के वृक्ष पर कोयल बोल रही थी। मैं अपने कमरे में बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी। इतने में मेरे पति ने कमरे में प्रवेश किया। मैंने देखा, आज वह बड़े क्रोधित थे। उनकी लाल आँखें इसका प्रमाण दे रही थीं। कमरे में आकर वह चुपचाप खड़े हो गये। मैंने पूछा, आज आप कुछ क्रोधित दिखलाई देते हैं! क्या कारण है?

उन्होंने भँवें चढ़ाते हुए कहा—तुम स्वयं कारण जानती हो।

मैंने उनका ऐसा भयंकर रूप नहीं देखा था। खैर, नम्रता से पूछा—मुझसे आज कौन-सा अपराध हुआ?

वह उत्तेजित होकर बोले—मुझे स्वप्न में भी तुमसे ऐसी आशा नहीं थी वीणा! स्त्रियों पर विश्वास करना भूल है। तुम्हारा इतना साहस?

मैंने कहा—आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते? इस तरह कहना अनुचित है।

तब उन्होंने कहा—तुम्हारे ही कारण समाज ने मुझे त्याग दिया है! मैंने अपमान सहा, कितना कष्ट उठाया, और अब तुम पुरुषों से पत्र-व्यवहार करती हो—यही कलंक अब बाकी था!

मैं बोली—मैंने किससे पत्र-व्यवहार किया है? हाँ, एक पत्र 'अनाथ-नारी-सदन' के मंत्री के पास भेजा था।

उन्होंने गरजकर कहा—क्यों भेजा? क्या मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं थी? तो पहले ही वहाँ अपने लिए क्यों नहीं प्रबन्ध करा लिया?

मुझे उनकी इन बातों का बुरा लगा। मैंने कहा—आपके कष्ट को देखकर, और नित्य अपना अपमान सहते-सहते, विवश होकर मुझे ऐसा करना पड़ा। आप इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं ?

उन्होंने एक पत्र निकालकर सामने फेंक दिया। मैंने पढ़ा, उसमें लिखा था—आप बड़ी प्रसन्नता से आश्रम में आ सकती हैं। आश्रम की स्थापना आप ही जैसी दुःखिता और अनाथा स्त्रियों के लिए हुई है।

उन्होंने तीखे स्वर में कहा—जब तुम्हें यहाँ सुख नहीं है, तो जाओ, यहाँ तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा तो अपयश फैल ही चुका, मुझे कोई भय नहीं है।

मुझे उनकी इन बातों पर बड़ा दुःख हुआ। मैंने कहा—मैं स्वयं चली जाऊँगी। विश्वास कीजिये, अब आपको कष्ट और अपमान न सहना पड़ेगा।

उसी दिन बड़ा साहस करके 'नारी-आश्रम, प्रयाग' जाने के लिए मैं घर से बाहर निकली।

ललित ने पूछा—वास्तव में उस समय तुममें इतना साहस कहाँ से आ गया वीणा ?

वीणा ने उत्तर में कहा—पड़ोस में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा थी। मेरे प्रति वह सदैव सहानुभूति प्रगट करते थे। उन्हीं से मैंने अपना सब हाल सुनाया। अन्त में मेरी दशा पर उन्हें तरस आ गया। वह मुझे प्रयाग पहुँचाने के लिए प्रस्तुत हो गये। उन्हीं के साथ मैं प्रयाग गई। वहाँ 'अनाथ-नारी-सदन' में मैंने प्रवेश किया। नगर से कुछ दूर, एक उपवन के

मध्य में, आश्रम का विशाल भवन खड़ा था। उपवन के चारों तरफ पक्की दीवार खिंची थी। चहार-दीवारी के अन्दर वृक्ष-लताएँ और फूलों के पेड़ लगे थे। विविध सुमनों की सुगन्ध से उपवन गमगमा रहा था। पक्षी सदा कलरव किया करते थे। उसमें लगभग सौ स्त्रियाँ रहती थीं। उसके संचालक रमाकान्तजी ने अपनी स्त्री की पवित्र स्मृति में उसकी स्थापना की थी। उनकी वृद्धावस्था थी। वह प्रायः उसकी देखरेख किया करते थे। मंत्री के हाथ में प्रबन्ध था। मंत्री की सहकारिणी दो वृद्धा स्त्रियाँ थीं। बाहरी हिस्से के कमरों में मंत्री का दफ्तर था। मंत्री थे मुरारी बाबू। उनका बड़ा मान था। मैं शान्तिपूर्वक वहाँ निवास करने लगी। वहाँ का सब काम बड़ी सफलता से चल रहा था। किसी को कोई कष्ट नहीं था। समय पर भोजन मिल जाता, और नियमानुसार कुछ कार्य करना पड़ता था। दिन बड़े सुख से कट रहे थे। संसार के सुख को मैं एकबारगी भूल गई थी। कभी-कभी माँ का ध्यान आता, तो विकल हो जाती थी। पुस्तकों के अध्ययन और सेवा-कार्य में दिल बहलाये रहती। एक दिन, संयोग की बात, मैं अपनी मानसिक चिन्ता के कारण बहुत विकल हो गई। अपने कमरे से निकलकर उपवन में जाकर बैठ गई। चन्द्रमा के शुभ्र प्रकाश से उपवन उज्ज्वल हो रहा था। जूही की झाड़ी पुष्पों से लदी हुई थी। चन्द्र-देव को देखकर मुझको मालूम हुआ कि वह मेरी दशा पर हँस रहे हैं—उन्होंने मेरे बाल्य-जीवन का सुखमय दिन भी देखा था। वह दिन भी देखा, और यह पतित जीवन भी देख रहे हैं!

यहाँ तक कहकर वीणा ने अपनी खिड़की से देखा—चन्द्रमा

आकाश में सफ़ेद बादलों से आँख-मिचौनी खेल रहे थे।

ललित ने कहा—आज बड़ी सुहावनी रात है वीणा! तुम्हारी यह कहानी इस जीवन में नहीं भूलेगी।

ख़ैर, मैं उस समय उपवन में बैठी थी। एक मास मुझे आश्रम में आये हो गया था। मुरारी बाबू ने मुझे एकान्त में बैठी देख लिया था। उन्होंने दासी भेजकर पुछवाया कि मुझे कोई कष्ट तो नहीं है, यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो कहेंगी। मैंने दासी को उत्तर दिया कि कह देना—मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है—बड़े सुख से हूँ। न जाने क्यों, मुरारी बाबू पढ़ाते समय मेरी तरफ बड़े ध्यान से देखा करते थे।

ललित ने पूछा—क्या आश्रम में शिक्षा भी दी जाती थी?

जी हाँ, आश्रम में कई अध्यापक थे। केवल शिक्षा के समय ही स्त्रियाँ पुरुषों के सामने होती थीं। संचालक महोदय भी कभी-कभी धर्म की शिक्षा देने आते थे। वह आश्रम के पास ही एक मकान में रहते थे। हाँ, तो मुरारी बाबू का ध्यान मेरी तरफ खिंचा हुआ था। इससे बहुत-सी स्त्रियों को संदेह हो गया था। मुझे पहले इस रहस्य का पता न था। मुझे मंत्री की इस दया अथवा कृपा का भी कारण मालूम न था।

अभी वीणा कह ही रही थी कि देखा—चम्पा महफ़िल से लौट आई। ललित को देखकर उसने कहा—आज आप अकेले हैं?

हाँ, बहुत देर बैठा बातें कर रहा था। क्या समय है?

बारह बज गया!

तब तो बड़ी देर हुई। अच्छा, अब जाता हूँ वीणा! फिर किसी दिन आऊँगा।

यह कहकर ललित चला गया। वीणा की बातें उसके दिमाग में चक्कर काटने लगीं।

७

कुहरे से आकाश ढका था। बड़ा जाड़ा पड़ रहा था। पूस का महीना था। ललित सायंकाल घर से घूमने के लिए निकला था। मार्ग में ही देवनाथ से मुलाकात हुई। देवनाथ ने कहा—भाई, आज-कल अलग-अलग क्यों फटके फिरते हो?

इधर तबियत अच्छी नहीं, और कई काम में था।

हाँ भाई, तुम्हें हम लोगों से मिलने का कब अवकाश है!

ऐसा क्यों कहते हो?

मुझे सब मालूम है!

क्या?

कुछ नहीं—कभी-कभी आप अकेले गाना सुनने जाया करते हैं। अरे यार! उस वेश्या के यहाँ हम लोगों का गुजारा नहीं है। सुना है, एक ही महीने में महन्त दयानन्दगीर ने उसे हजारों रुपये दिये हैं।

ललित को एक नई बात मालूम हुई। वीणा के चाहने वाले बहुत हैं, यह जानकर उसे स्वाभाविक जलन हुई। उसने कहा—दो-एक दिन सिर्फ गया था यार! और तो कभी नहीं जाता। क्या कोई महन्त भी उसके यहाँ जाता है?

हाँ, वह करोड़पती है। मुफ्त की आमदनी है, उसे क्या परवा, लाखों दे दे! बाजार में तो आज-कल बस उसी की तूती बोल रही है।

तो चलो, आज कहीं चला जाय।

अपने-राम को तो बोतलानन्द से इश्क है! वह आ जाय, तो जहाँ कहो, वहीं चला जाय।

चलो किसी होटल में तुम्हें पिलाता हूँ।

चलो भाई, जहाँ कहो।

होटल में दोनों गये। देवनाथ के साथ—उसके बहुत आग्रह करने पर—ललित ने भी पी लिया। ललित को उसमें अब विशेष आनन्द आता था; अतएव वह संकोच न करता।

हवाई घोड़े पर चढ़कर दोनों बाजार में आये। फिर क्या कहना था! चारो तरफ से इशारे होने लगे। कोई अपना रुमाल दिखाती, कोई अपनी तिरछी नजरों को इधर-उधर दौड़ाती। देवनाथ पुराना पापी था! उसे देखकर सब समझ रही थीं कि आज मयखाना यहीं बनेगा।

ललित भी अपनी मस्तानी चाल से चलते हुए अपनी पागल आँखों से हर तरफ देख रहा था। इतने में वीणा का मकान आया। ललित बड़े ध्यान से देखने लगा। देवनाथ ने कहा—अरे यार! यहाँ तो गाना हो रहा है। देखो न, खिड़की में से खिलखिलाहट की आवाज सुनाई पड़ती है!

ललित ने खुश होकर कहा—इसके यहाँ क्या बराबर आदमी आते-जाते हैं?

अजी इसे फुरसत कहाँ ? जिसको देखो, वही इसके यहाँ चला आता है। बाजार-भर में एक यही तो है। ईश्वर ने गजब का हुस्न भी तो दिया है !

ललित चुप था। वह अपने मन में विचार करने लगा। उसका नशा बढ़ता चला गया। बोला—देवनाथ ! मैं तो भाई अब घर जाऊँगा।

अच्छा तो जाओ, मैं भी घर जाता हूँ।

देवनाथ झूमता हुआ घर चला गया। किन्तु ललित बीच रास्ते से ही फिर लौट पड़ा। वीणा की शेष कहानी सुनने की उत्कट उत्कंठा बनी हुई थी। बेधड़क वीणा के मकान में चला गया। वहाँ उस समय चम्पा गा रही थी। उसके चाहने वाले सामने बैठे थे।

ललित को देखकर वीणा खड़ी हो गई—ललित को लेकर दूसरे कमरे में चली गई। ललित ने कहा—मैं एक बार आज पहले भी आया था; मगर गाने की आवाज सुन पड़ी; इस लिए ऊपर नहीं आया। देवनाथ भी साथ था। फिर जब वह चला गया, तो मैं बड़ा साहस करके ऊपर आया हूँ।

चम्पा के यहाँ लोग आये हैं। वही गाती थी। मैं तो यों ही चुप बैठी थी।

वीणा ! तुम्हारी कहानी सुनकर रात-भर नींद नहीं आई। दिन-भर तुम मेरी आँखों पर रहती हो।

यह आपकी कृपा है। मैं तो आपकी दासी हूँ।

नहीं वीणा ! तुम्हारी तरह मेरा जीवन भी प्रेम के कारण नष्ट हो चुका है। अच्छा, अब तुम अपनी शेष कहानी सुना जाओ।

वीणा कहने लगी—मुरारी बाबू की आँखों की चुलबुलाहट और मेरे प्रति उनकी सहानुभूति रमाकान्तजी की आँखों से नहीं छिप सकी। किन्तु स्वाभाविक गम्भीरता के कारण वह कुछ न कहते। मुझे भी मुरारी बाबू पर शंका होने लगी। आश्रम की स्त्रियाँ कभी-कभी कह भी देती थीं कि मंत्री को वश में कर लिया है !

वसंत ऋतु की सुहावनी रात थी। विमल चैती चाँदनी छिटक रही थी। मैं उपवन में टहल रही थी। किसी पुरुष को अपनी ओर धीरे-धीरे आते देखकर मैं एकाएक ठिठक गई। पास आने पर मैंने देखा, मुरारी बाबू ! हृदय धक-धक करने लगा। मैंने पूछा मुरारी बाबू ! इस समय आप यहाँ कैसे आये—कोई जरूरी काम है क्या ?

उन्होंने कहा—मेरे जीवन का सबसे जरूरी काम है।

मैं आश्चर्य से उनकी तरफ देख रही थी। फिर मैंने पूछा—क्या आप अध्यापिका से मिलना चाहते हैं ?

इस पर उन्होंने आवेशपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—नहीं वीणा ! मैं तुम्हीं से मिलने आया हूँ। आज उसका निबटारा होना चाहिये। यह समझ रखो कि मेरा मरना-जीना तुम्हारे हाथों में है !

मैं तो सन्नाटे में आ गई ! चारो तरफ सहायता के लिए दृष्टि दौड़ाते हुए मैंने कहा—यह क्या कहते हैं मुरारी बाबू ?

उन्होंने कहा—वही कह रहा हूँ, जो मेरे जीवन का छिपा हुआ सत्य है—वीणा ! तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता।

मैंने बड़े साहस से कहा—मुरारी बाबू ! मैं बड़ी दुखिया हूँ ! संसार की सताई हुई हूँ। एक रोटी और तन ढकने के कपड़े की कमी इस मतलबी दुनिया में नहीं है। इस आश्रम में मैं शान्त जीवन व्यतीत करने आई थी। आप इसमें बाधा न डालें।

मेरी बातें सुनकर, न जाने क्या उनके मन में आया, वह मेरे पैरों की तरफ लपके ! भयभीत होकर मैं पीछे हटी। गहरी क्यारी में पाँव पड़ जाने से अचानक गिर पड़ी। ठीक उसी समय लता की ओट से रमाकान्तजी हाथ में छुरा चमकाते हुए निकल पड़े !

यह कहते हुए वीणा रोमांचित हो रही थी। वह काँप रही थी। ललित ने उसकी तरफ देखा, उसके मस्तक पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। ललित ने बड़े आश्चर्य से पूछा—तो क्या रमाकान्त ने उसी समय मुरारी की हत्या की ?

नहीं, रमाकान्त ने क्रोध के आवेश में कहा—नीच ! तू विश्वास-घाती है ! तूने बड़ा धोखा दिया। पातकी ! तुझे नरक की ज्वाला जलायेगी ! जा, अभी यहाँ से दूर हो।

ऐसा कहकर वह उग्र दृष्टि से मुरारी को देखने लगे। उसी समय मुरारी बाबू चुपचाप अपने कमरे में चले गये। उसी रात में उन्होंने आत्महत्या कर ली ! सबेरे चारो तरफ यह समाचार फैल गया।

इस भीषण कांड से रमाकान्तजी बहुत डरे। वह नहीं जानते थे कि मुरारी बाबू आत्महत्या कर लेंगे। वह कई दिनों तक शोक में मग्न घर ही पर बैठे रहे। इधर आश्रम की सब स्त्रियाँ मुझे कोस रही थीं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह बैठती थी कि अरे यह कितने

पर घाल चुकी है ! कुछ दिनों तक मुसलमानों के यहाँ रही; जब कहीं ठिकाना न लगा, तब आश्रम को कलंकित करने आई; इसका तो मुँह देखना पाप है।

आश्रम में अब मेरा सहायक कोई न था। सब मुझे धिक्कारते थे ! मेरी दशा बड़ी विचित्र हो गई। आश्रम की एक दासी कभी-कभी मुझे धैर्य देती थी। एक दिन मैंने उससे कहा—क्या करूँ, इस जीवन का रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। ईश्वर ने अपनी आँखें बन्द कर ली हैं। निष्ठुर मृत्यु भी नहीं आती कि सब झंझट तय हो जाय।

उस दासी ने मुझे समझाते हुए कहा—इस तरह घबड़ाना नहीं चाहिये। इस संसार की लीला बड़ी विचित्र है। न जाने अभी कौन-कौन-से दिन देखने होंगे ! तुम अभी नहीं जानती कि खून के मामले में तुम पकड़ी जाओगी, और आश्रम वाले ही तुम्हें गिरफ्तार करा देंगे।

मैंने आश्चर्य से उसकी तरफ देखते हुए कहा—मुझे इसका भय नहीं है; किन्तु अब मेरा यहाँ रहना असम्भव है; क्योंकि यहाँ की स्त्रियाँ मुझे रहने न देंगी। उनकी बातों से मेरे दिल पर जख्म हो गया है।

ललित बड़े ध्यान से सुन रहा था। बीच ही में बोल उठा—एक बीड़ा पान अपने हाथ से बनाकर दो वीणा ! मेरे मस्तक में बड़ी पीड़ा हो रही है।

वीणा पान देते हुए ललित की तरफ देखकर बड़ी आतुरता से बोली—क्यों, दर्द कैसा हो रहा है ?

कुछ ऐसा ज्यादा नहीं, तुम अपना हाल कहो।

ललित की ओर से आश्वासन पाकर वीणा आगे कहने लगी—उसी दासी की बातों में आकर मैं आश्रम से एक दिन उसी के साथ भाग निकली। किसी-किसी तरह काशी पहुँची। वही मुझे इस मकान में ले आई। मैंने भी देखा कि अब जीवन व्यतीत करने का कोई दूसरा साधन नहीं रह गया। सामाजिक तिरस्कार ने संसार में कहीं आश्रय का स्थान नहीं रहने दिया। विवश होकर रूप के हाट में रूप का सौदा बेचने लगी। तब से आज तक रूप की दूकान बिछाये बैठी हूँ।

वीणा की आत्मकथा सुनकर ललित को अपने इस कर्म पर बड़ी घृणा हुई कि आज वह भी रूप का सौदा करने के लिए इसी बाजार में आता है, और स्वयं वीणा के रूप का ही वह ग्राहक है! उसने आत्मग्लानि को छिपाते हुए कहा—वीणा! तुम्हारा जीवन बड़ा विचित्र है! इससे तो अच्छा था कि मुरारी से तुम्हारा प्रेम हो जाता?

वही बात अब भी मैं कभी-कभी विचार करती हूँ; किन्तु उस समय मेरा भाव दूसरा था। देख लिया—जब कि संसार अच्छे लोगों का साथ नहीं देता, तो विवश होकर यही करना पड़ा। और क्या करती? यद्यपि इसमें मुझे वास्तविक सुख नहीं है, फिर भी दिन अच्छी तरह कट जाता है।

इतना कहकर वीणा ललित की तरफ देखने लगी। वह कुछ विचार कर रहा था। वीणा ने पूछा—आप कुछ सोच रहे हैं?

मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मुरारी बाबू मेरे परिचित थे!

क्यों, आप उन्हें कैसे जानते थे ?

मैं उन्हें जानता नहीं था, न मैंने उन्हें देखा था; किन्तु 'मुरारी' नाम के एक व्यक्ति से मेरा स्नेह था अवश्य। और, मैंने यह भी सुना था कि उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। फिर देखता हूँ, तुम्हारी कहानी में भी 'मुरारी' हैं, और वह भी आत्महत्या कर लेते हैं। इससे मुझे शंका होती है। वीणा ! यदि तुम्हारे कारण मेरे उस स्नेही 'मुरारी' की मृत्यु हुई, तो यह समझो कि मेरे हाथ का लगाया हुआ वृक्ष तुमने नष्ट कर डाला !

यह कहते-कहते ललित व्याकुल हो उठा। दुलारी की चिन्ता ने उसे उन्मत्त बना दिया। वह एकाएक उठा। उसका हाथ पकड़ कर वीणा ने कहा—ललित बाबू ! आपकी बात मैं नहीं समझी।

उसे तुम न समझो तो अच्छा है। मुरारी मेरे पड़ोस में रहने वाली—मेरे बाल्य-जीवन की सहचरी—'दुलारी' का पति था।

वीणा आश्चर्य से ललित की तरफ देखने लगी—जैसे उसने ललित के साथ कोई भारी अपराध किया हो ! ललित ने कहा—अच्छा, इस समय अब जाता हूँ वीणा !

बस इतना ही कहकर वह चला गया। वीणा एक शब्द भी न कह सकी, स्तब्ध बैठी रह गई !

८

ललित अब नित्य मद्यपान करने लगा। उसे वीणा से भी नफरत हो गई। उसका व्यय बहुत बढ़ गया। उसकी माँ को भी उस पर शंका हो रही थी। एक दिन माँ ने कहा—ललित, आज-

कल तुम्हारा स्वभाव बदल रहा है। तुम्हारी चाल में पहले से बहुत अन्तर है। तुम खुद समझदार हो।

माँ, मुझे खुद मालूम है, मैं अपना भला-बुरा समझ रहा हूँ।

माँ ने फिर कुछ न कहा। ललित फिर दुलारी के प्रेम में विकल होने लगा। मन-ही-मन कहने लगा—दुलारी मुझे अब पहचान भी न सकेगी। कितना समय बीत गया! आह! संसार विचित्र है। दुलारी! अब तुम्हारा ललित वह ललित नहीं रहा। अब उसमें बड़ा अन्तर आ गया है। वह उसका पवित्र प्रेम था। अब वह प्रेम को रुपयों से खरीदना चाहता है।

इसी तरह फिर दिन कटने लगे। उस दिन एकाएक दुलारी की माँ तीर्थयात्रा करके घर आई थी। दुलारी के पति का मृत्यु-समाचार सुनकर वह विलाप कर रही थी। उसके विलाप से ललित का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। लोगों के बहुत-कुछ समझाने पर वह शान्त हुई। किन्तु हृदय की भीषण वेदनाओं को कौन शान्त कर सकता है?

ललित ने मन में विचार किया, अब दुलारी की माँ आ गई है, शीघ्र ही अब दुलारी के दर्शन होंगे। उसकी उत्कंठा दिनों-दिन बढ़ने लगी। कभी वह सोचता—भोग-विलास में ही जीवन का सारा आनन्द है। रुपयों का ही संसार है। यह व्यर्थ की प्रेम-चिन्तायें हैं। इससे क्या लाभ?

  

ललित अभी घूमने के लिए घर से निकल ही रहा था कि कारिन्दा को उसने अपने सामने देखा। पूछा—कहो, क्या खबर है?

कारिन्दा ने कहा—सरकार, आपकी चाची की हालत बहुत खराब है, दो-एक दिन की मेहमान हैं। आपको देखने के लिए बुलाया है।

ललित विचार करने लगा। अब वह सांसारिक जीवन व्यतीत करने की चिन्ता में था। विलास की इच्छा थी। धन की आवश्यकता थी। उस समय, जब वह लाखों की सम्पत्ति ठुकराकर चला आया था, एक तरंग थी—प्रेम का उन्माद था—स्वर्गीय सुख की कल्पना थी—उसके सन्मुख धन का कोई मूल्य न था; किन्तु अब केवल धन से ही प्रयोजन था। अतएव, कुछ विचार करने के बाद उसने कहा—मुझे बुलाया है?

हाँ सरकार।

मेरी तो इच्छा वहाँ चलने की नहीं होती। मगर उनकी अवस्था शोचनीय है, इसलिए चलना ही पड़ेगा।

उसी दिन ललित कारिन्दा के साथ गाँव पर पहुँचा। देखा, वास्तव में चाची की हालत खराब हो गई थी। चाची ने उसे देख कर अश्रुपात करते हुए कहा—बेटा, तुम्हें मेरी कुछ भी चिन्ता नहीं? अब तुम दूसरे हो गये? तुम्हें क्या हो गया है? हाय! मैं ऐसा नहीं जानती थी कि तुम्हें जरा भी मेरा मोह न रहेगा!

ललित ने सांसारिक ढंग से कहा—चाची, मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। मैं तुम्हारा ही हूँ। अगर न होता, तो यहाँ आता कैसे! मुझे क्षमा करो चाची!

ललित की बातों पर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिर कहा—अब मैं नहीं बचूँगी। अब चलने की तैयारी है। जमींदारी बहुत

कुछ न देखने से नष्ट हो गई है। अब तुम सम्हालो। तुम्हारे सिवा अब मेरा अपना कौन है ?

ललित ने कुछ उत्तर नहीं दिया। डाक्टरों को बुलवाया। बड़े उत्साह से चाची की सेवा करने लगा। किन्तु उनका समय आ गया था। उन्होंने सदैव के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं !

ललित अब उस सम्पत्ति का स्वामी हुआ। कई लाख रुपये बंक में जमा थे। उन्हें उसने अपने नाम जमा कराया। अब उसकी बात ही कुछ और थी ! धन की आवश्यकता पूरी हो गई। इतना धन उसके लिए पर्याप्त था।

वह फिर कई मास बाद घर आया। दो-ही-चार दिनों में उसकी कल्पना के अनुसार सुख और विलास की सब सामग्री एकत्र हो गई। मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर, सब कुछ हो गया। अब सायंकाल पैदल न जाकर मोटर पर घूमने जाता था। उसकी एक बार फिर इच्छा हुई कि वीणा को देखें।

  

उधर वीणा की मनोभावना बदलने लगी थी। पहले वह संसार में धर्म-कर्म का महत्त्व समझती थी। किन्तु अब वह उस वायु-मंडल से दूसरे वायु-मंडल में आ गई थी। अतएव, दिन-पर-दिन उसकी मनोवृत्तियाँ बदलती गईं। रूप की प्यास से विकल मनुष्य उसके ग्राहक थे। संसार में सुख का प्रलोभन किसे नहीं होता ? वीणा भी अपने को न सँभाल सकी। दिन-रात कितने ही दुर्व्यसनी उसकी उपासना करने आते। वे उसके लिए सब कुछ देने को तैयार थे। अब उसे रुपयों की कमी न थी। जो

आता, कुछ-न-कुछ देकर ही जाता। उसका संसार ही बदल गया, जमाना ही पलट गया!

वीणा के सामने अब किशोरी और चम्पा का व्यवसाय भी मंद हो गया। उस घर में जो आता, वह केवल वीणा से ही बातें करने को उत्सुक रहता। उसके अपूर्व सौन्दर्य में एक अद्भुत आकर्षण था। फिर, अभी तक वह सौन्दर्य साधारण वस्त्रों और चिन्ता तथा दुःख के कारण छिपा हुआ था। अब एक-से-एक वस्त्र और आभूषण वह धारण करती थी। सांसारिक विलास-वासना में उसका चित्त लिप्त रहता था। दिन-रात में कितने कपड़े-गहने बदलती। बड़ी सजधज से बन-ठनकर तपाक के साथ लोगों से मिला करती।

शहर-भर में वीणा की चर्चा हो रही थी। गान-विद्या में भी वह चल निकली। स्वभाव भी मिलनसार था। सहृदयता और भावुकता भी खूब थी। पढ़ी-लिखी थी ही। संसार का अनुभव भी काफी था। फिर क्यों न कोई उसकी चोचलेबाजी के जाल में फँसता?

वीणा जो कुछ कमाती, सब अम्मा को दे देती। धीरे-धीरे यह बात उसके मन में खटकने लगी। वह अपने मन में विचार करती—मैं तो इतना पैदा करती हूँ, मेरे ही कारण इन लोगों का पेट चलता है, और मुझे ही इनके सामने हाथ फैलाना पड़ता है। मैं कब तक इनका मुँह जोहती रहूँ?

वीणा के प्रति चम्पा और उसकी माँ का भाव-व्यवहार बदलने लगा। उस धनाढ्य महन्त ने भी वीणा के कान भर दिये कि इस तरह पराधीन रहने में तुम्हें क्या सुख है—मैं तुम्हारे लिए एक

अलग मकान खरीद देता हूँ—तुम इन लोगों का साथ छोड़ो।

वीणा ने नित्य के कलह-कोलाहल से ऊबकर महन्त की बातें स्वीकार कर लीं—उन लोगों का साथ छोड़ दिया। एक दूसरे सुसज्जित विशाल भवन में चली गई। उसमें सुख की सब सामग्री प्रस्तुत थी। अपनी कला में तो वह यथेष्ट निपुण थी। मोहन-मंत्र के प्रयोग में सिद्धहस्त हो गई थी। प्रसिद्धि के कारण धन उपार्जन करने में उसे विशेष प्रयास न करना पड़ता था। जो नवागन्तुक उसके यहाँ आ जाता, वह भली भाँति प्रसन्न होकर जाता। साथ ही, जो कुछ उसके पास होता—वीणा को अर्पण किये जाता। महन्त तो वीणा के हाथ बिक ही चुका था। शराब, घुड़दौड़ और ऐश-आराम से जो कुछ उसके पास थाती-पूँजी बच गई थी, सो सब उसने वीणा के चरणों पर भेंट चढ़ा दी!

वीणा अब वह वीणा नहीं थी। वह ऐसी सम्पत्ति-शालिनी हो गई कि गये दिन की बातें भूल-सी गईं। अब वह सर्वस्व-दाता महन्त भी उसकी नजरों से गिरने लगा!

९

वसन्त का आगमन था—नवयुवकों और प्रेमियों के उल्लास का समय! सन्ध्या समय ललित अपनी मोटर पर घूमने जा रहा था। मार्ग में देवनाथ दीख पड़ा। ललित ने मोटर खड़ी कर दी। संकेत करके उसे बुलाया। वह आकर मोटर पर बैठता हुआ बोला—क्या कहीं घूमने चल रहे हो?

हाँ, तबियत नहीं लगती।

क्यों—दिन-रात तो मस्त रहते हो, फिर भी तबियत नहीं लगती ?

नहीं यार, तबियत का लगना दूसरी बात है। किसी तरह दिन काट रहा हूँ।

और मैं भी अब अपने जीवन का अन्त कर रहा हूँ—देख लिया संसार ! एक-से-एक बढ़कर शराब पी, सुख की तलाश की; मगर अब समझ में आया कि सुख तभी तक है, जब तक बोतल पास में रहती है। बोतल पास न रहने से संसार सूना मालूम पड़ता है !

घबड़ाओ नहीं, तुम्हारा प्रबन्ध हो जायगा।

तुम्हारी कृपा भाई ! क्या कहूँ यार, अब वे दिन चले गये ! मेरा तो मित्र-मंडल ही कुछ दूसरा था। उसमें एक-से-एक बढ़े-चढ़े रत्न थे। मगर संसार की लीला विचित्र है। सब छूट गये। अब कहाँ कोई मित्र है ? मजे के लिए सब साथ चाहते हैं। यहाँ तो अब दिल ही बदला जा रहा है।

ललित ने उसकी बातों पर सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—भाई, तुमने भी खूब दुनिया देखी है। अपने समय में बड़े सुन्दर रहे होगे ?

उस समय की बात न पूछो ! ललित, मेरा भी एक समय था। उसी की याद कर-करके दिन काट रहा हूँ। मैं भी कभी प्रेम करता था। मुझे भी इस संसार में कभी कोई चाहने वाला था। मगर अब ? अब तो मेरी बात पूछने वाला भी कोई नहीं। तुम लोग समझते हो, मैं बड़ा सुखी हूँ, सदैव प्रसन्न रहता हूँ; मगर

सच पूछो तो इतने दिनों की खोज के बाद यही निश्चय कर सका हूँ कि यह जीवन वस्तुतः नदी की एक धारा है, जो न जाने बह कर कहाँ चली जायगी। अतएव, हँस-बोल लो, सबसे मिल-जुल लो; बस यही इतना रह जाता है।

ललित ने उसकी ओर देखते हुए पूछा—आज तो तुम कुछ दुखी मालूम पड़ते हो देवनाथ—बात क्या है?

देवनाथ ने आँखों में आँसू भरकर कहा—आज का दिन मेरे लिए इस जीवन का सबसे बड़ा दुखमय दिन है। आज ही के दिन मेरी स्त्री का शरीरान्त हुआ था। वह सदैव के लिए मुझे छोड़कर चली गई। ललित, मैं भी कभी नवयुवक था। मेरे हृदय में भी प्रेम का तूफान था। मैं अपनी स्त्री को ही अपने हृदय की देवी समझता था। उसके सौन्दर्य का मैं अनन्य उपासक था। किन्तु वह दिन बीत गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् मैं समझता था कि मैं जीवित नहीं रह सकूँगा। मगर आज भी तुम देखते हो, इसी तरह जीवित हूँ—प्राणों का मोह बड़ा विलक्षण होता है!

यहाँ तक कहते-कहते देवनाथ की आँखों से आँसू छलछला पड़े। ललित ने देखा कि आज देवनाथ की बातचीत का ढंग ही दूसरा है। अतएव, उसने बातों को बदलना चाहा। बोला—आज-कल वीणा नहीं दिखलाई देती—कहाँ चली गई?

उसने चम्पा का साथ छोड़ दिया। अब वह दूसरे मकान में रहती है। उसकी तो दिन-पर-दिन उन्नति हो रही है। उसका अपना मकान है। अब कमी किस बात की है! बड़े-बड़े राजे-महा-राजों के यहाँ जाती है। उसकी बात न पूछो।

चलो आज उसको देखा जाय।

व्यर्थ है भाई, इसमें सच्चा सुख नहीं है। तुम क्यों नष्ट हो रहे हो ललित? खाना-पीना—मस्त रहना—इसी में संसार का सुख है। स्त्री, जो हजारों को देख चुकी है, किसकी होती है—और फिर जब उसका प्रेम ही व्यवसाय हो? मैं जाता हूँ, कुछ देर के लिए सबको प्रसन्न कर देता हूँ; मगर जानते हो उसका कारण? उसका सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है कि किसी के ऊपर आसक्त कदापि न होना चाहिये!

मैं उस पर आसक्त तो हूँ नहीं; मगर मन बहलाने के लिए कभी-कभी उसे याद कर लेता हूँ।

अगर तुम्हारी इच्छा है, तो चलो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

  

मोटर रूप के हाट में अपनी धीमी चाल से जा रही थी। देवनाथ ने उँगली के संकेत से दिखाते हुए कहा—यही वीणा का मकान है।

ललित ने मोटर खड़ी कर देने का हुक्म दिया। फिर बड़े आश्चर्य से कहने लगा—क्या अब वह इतने सुन्दर मकान में रहती है?

ठीक उसी समय मोटर की आवाज सुनकर वीणा ने ऊपर से देखा। ललित से उसकी आँखें चार हुईं। कुछ इशारे भी हुए। फिर दोनों दोस्तों ने उसके मकान में प्रवेश किया। उसका सुसज्जित कमरा देखकर ललित चकित हो गया। उसे ऐसी आशा नहीं थी कि इतने थोड़े समय में वीणा का इतना परिवर्त्तन हो जायगा। कमरे के बाहर से ही गुलाब की मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी।

वीणा ने स्वागत करते हुए कहा—मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि आप इतनी जल्दी भूल जायँगे !

ललित ने कहा—मैं यहाँ था नहीं, होता तो अवश्य आता।

मुझे मालूम था कि आप नहीं हैं। मैंने पता लगा लिया था।

कैसे ?

आपकी मित्र-मंडली से मालूम हो गया था।

तो आपको मेरी इतनी चिन्ता क्यों थी ?

इसे पूछकर आप क्या करेंगे ?

देवनाथ अभी तक चुप था। वीणा की तरफ देखते हुए उसने कहा—बाईजी, सलाम !

वीणा ने हँसते हुए कहा—सलाम ! क्या इतनी देर तक आप किसी दूसरी दुनिया में थे ?

जी हाँ।

आज आपका चेहरा उतरा हुआ-सा मालूम पड़ता है !

हाँ, कुछ उतर गया था—पर अब तो ठीक है। कोई चिन्ता नहीं। अभी बादशाही नहीं है।

आपकी बादशाही का इन्तजाम कर दूँ, तो क्या इनाम मिलेगा ?

इनाम ? भला मैं तुम्हें क्या इनाम दे सकता हूँ ? हाँ, दुआ जरूर दूँगा। और क्या !

वीणा ने आलमारी खोलकर उसमें से एक सुन्दर कंटर निकाला, और एक सुनहले शीशे के गिलास के साथ देवनाथ के सामने रख दिया। देवनाथ ने बड़ी प्रसन्नता से उसे झट उठा गिलास में भर कर ललित की तरफ बढ़ाया। ललित देवनाथ की तरफ देखने

लगा। देवनाथ ने कहा—अरे इसे अपना घर समझो, यहाँ संकोच करने की आवश्यकता नहीं है।

वीणा भी ध्यान से देख रही थी। ललित ने गिलास लेते हुए कहा—जैसा तुम कहो—लो, पीता हूँ।

ललित पीने लगा। देवनाथ ने भी काफी मात्रा लेकर पीना आरम्भ किया। ललित ने वीणा की तरफ मस्तानी निगाह से देखते हुए कहा—तुम इसे पीती हो कि नहीं?

झूठ क्यों कहूँ, कभी-कभी।

तो आज मेरे हाथों से—

जैसा आप कहें।

ललित ने गिलास भर दिया। वीणा ने उसे मुँह बनाते हुए, हाथ से गला सहलाते हुए, बड़ी नजाकत से पी लिया। कमरे में सन्नाटा छा रहा था। देवनाथ चुप था—कुछ विचार कर रहा था—आज हँसाने की चेष्टा में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता था—हृदय किसी दूसरी ही तरंग में था। ललित ने वीणा से कहा—आज कुछ गाना नहीं सुनाओगी?

गाने की इच्छा नहीं होती।

क्यों?

मालूम नहीं—हाँ, आज देवनाथ बाबू गाना सुनावेंगे।

देवनाथ रस-भरी तिरछी आँखों से वीणा की ओर देखते हुए बोला—मेरा गाना सुनने के लिए बहुत बड़ा दिल चाहिये!

वीणा हँसकर बोली—मेरा दिल बहुत बड़ा है, आप सुनाइये।

ललित ने भी समर्थन किया। कारण, देवनाथ कभी-कभी नशे

में बहुत सुन्दर गा लेता था। फिर क्या, देवनाथ ने एक दर्द-भरी तान में धीरे-धीरे गाना आरम्भ किया—

न किसी के आँख का नूर हूँ,
न किसी के दिल की पुकार हूँ।
जो किसी के काम न आ सका,
मैं वो एक मुश्तगुजार हूँ॥

ललित और वीणा—दोनों—के हृदय-पटल पर देवनाथ का गाना असर कर रहा था। ठीक उसी समय नौकर ने आकर वीणा से कहा—महन्त जी आये हैं।

वीणा ने निगाहें फेरकर उत्तर दिया—कह दो इस समय फुर्सत नहीं है!

ललित और देवनाथ चुपचाप वीणा की तरफ देख रहे थे। ललित ने पूछा—महन्त कौन?

वीणा—एक हैं आपके शहर के धनी और धर्माचार्य!

देवनाथ ने पूछा—वही दयानन्दगीर?

ललित ने गम्भीरता से पूछा—हाँ! तो उनको इस तरह क्यों कहला दिया?

वीणा बड़ी शान से झुँझलाकर बोली—और क्या कहती?

ललित—तुम बड़ी निष्ठुर हो!

एक दिन संसार भी मेरे लिए निष्ठुर था—मुझे आश्रय देने में लोग अधर्म समझते थे।

ललित विस्मय करने लगा। फिर पूछा—तुम्हारे यहाँ तो बड़े-बड़े धार्मिक लोग आते होंगे।

अभी आपने तो केवल एक ही महन्त का नाम सुना है। मेरे यहाँ ऐसे-ऐसे लोग आते हैं, जो त्रिकाल संध्या करते हैं—धर्म के नाम पर पागल बने फिरा करते हैं। वे ही यहाँ आकर शराब और मांस तक उड़ा जाते हैं!

क्या तुम भी मांस खाती हो?

नहीं, उससे मुझे घृणा है; मगर मेरे यहाँ आकर बहुत-से लोग होटल से मँगवाकर खाते हैं। उन्हीं की बातें कहती हूँ।

वर्तमान समय में तो धर्म की आड़ में अनेक प्रकार के घृणित अत्याचार हो रहे हैं। धर्म की ओट में बैठकर कितने बक-ध्यानी खूब खुल खेलते हैं—बाहर राम-राम, भीतर सिद्ध काम!

वीणा ने उत्तेजित स्वर में कहा—मेरा वश चले, तो इन धार्मिक पाखंडियों का नाश करा दूँ। इनके छिपे अत्याचार से आज समाज का कितना अनिष्ट हो रहा है! कितने भले घर की स्त्रियाँ आज इसी बाजार में वेश्या बनकर बैठी हैं—क्या उन्हें यह व्यवसाय प्रिय है? कदापि नहीं; केवल पेट के लिए उन्हें ऐसा करना ही पड़ता है! जब कोई दूसरा आश्रय नहीं मिलता, तो बेचारी क्या करें?

यह कहते हुए वीणा की आँखों के सामने उसका अतीत जीवन घूमने लगा। वह चुप हो गई। देवनाथ ने कहा—अब जाड़ा लग रहा है, रात बहुत हो गई, चलना चाहिये।

वीणा ने अपनी किमख्वाब की दुलाई देते हुए कहा—लीजिये इसे············अब जाड़ा नहीं लगेगा।

बड़ी कृपा है—मुझे आपका स्वभाव बहुत पसन्द है!

ललित का ध्यान घर की ओर गया—अब देर हो रही है,

जाता हूँ, फिर आऊँगा—कहकर उठने लगा।

वीणा भी खड़ी हो गई। ललित ने अपनी जेब से सौ रुपये का एक नोट निकालकर वीणा के हाथ में दे दिया। वीणा ने उसे देखकर वापस कर दिया। बोली—मैं आपसे रुपये नहीं चाहती, रुपयों के लिए संसार पड़ा है, मैं आपका केवल दर्शन चाहती हूँ। अगर एक बार आपका दर्शन मिल जाया करे, तो मेरा अहोभाग्य !

ललित की समझ में बात नहीं आई। वह आश्चर्य से वीणा की तरफ देख रहा था। वीणा के व्यवहारों में उसे बनावटी प्रेम नहीं मालुम पड़ता था। उसने समझा—वीणा के हृदय में मेरे लिए भी कुछ स्थान है।

किन्तु जब ललित को दुलारी का खयाल होता, तो उसे यह ज्ञात होता कि किसी भारी बोझ से उसका पैर जमीन में धँसा जाता है। वह अपने मन में विचार करता—इसी वीणा के कारण दुलारी का सर्वनाश हो गया, और वही वीणा अब मेरे विलास की सामग्री है ! नहीं, यह मेरा अन्याय है। फिर उसके विचार बदल जाते। वह कहता, इसमें वीणा का कोई दोष नहीं। मुरारी ने स्वयं आत्महत्या कर ली। यह तो उसी तरह है—जैसे मैं यदि दुलारी के लिए आत्महत्या कर लूँ, तो इसमें दुलारी का क्या दोष है ?

कुछ देर बाद देवनाथ और ललित अपने-अपने घर चले गये।

१०

प्रभात का समय था। जाड़े के सफेद बादलों से आकाश ढका हुआ था। ललित अपने बरामदे में बैठा था। उसने देखा—दुलारी आ रही थी। उसके साथ तीन वर्ष का एक बालक भी था।

ललित आश्चर्य से उधर देखने लगा। उसका हृदय सहसा काँप उठा। किन्तु इतने दिनों पर दुलारी को देखकर उसके नयन पुलकित हो उठे। पर दुलारी सतृष्ण नेत्रों से ललित की तरफ देखती हुई अपने घर की ओर चली गई।

ललित बैठे-बैठे विचार करने लगा—दुलारी में अब कितना परिवर्त्तन हो गया! बार-बार यही बात उसे चुभती थी।

भोजन का समय हुआ। वह भोजन करने चला गया। माता ने थाली सामने रख दी। वह चुपचाप भोजन करने लगा। माँ ने चालचलन और रंग-ढंग देखकर उससे बोलना छोड़ दिया था। एक दिन, बड़ी करुणा से रोकर, ललित से कहने लगी थी—बेटा, संसार में मनुष्य इस लिए पुत्र चाहते हैं कि उनकी कीर्ति बढ़े; किन्तु तुमने कुछ नहीं किया। तुम्हारे जीवन को देखकर मुझे जो हार्दिक दुःख होता है, उसे मैं ही जानती हूँ।

इस पर ललित ने कहा था—माँ, मेरी समझ में ही अभी नहीं आता कि इस जीवन का क्या उद्देश है, और मनुष्य को किस तरह अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये।

फिर ललित की माँ ने कुछ न कह उस दिन से बोलना ही छोड़ दिया। वह पढ़ी-लिखी थी—सांसारिक बातों को भली भाँति

समझती थी। अतएव दिन-पर-दिन उसका दुख बढ़ता ही गया।

माता का हृदय अपने पुत्र के लिए कितना कोमल और स्नेह-पूर्ण होता है! वह अपने पुत्र के लिए सुख का सारा प्रबन्ध कर लेती है; पर उसकी खराब चाल को कभी नहीं देख सकती।

ललित की माँ को बड़ी-बड़ी आशायें थीं। वह सोचा करती थी कि ललित भी अपने समय का एक प्रसिद्ध व्यक्ति होगा। सुन्दर था, होनहार था, अच्छे वंश का था—फिर क्यों न ऐसे पुत्र पर माता को गर्व हो। किन्तु आज—जब लोग कहते हैं कि ललित भ्रष्ट हो गया—उसकी चाल बिगड़ गई, तब माता के हृदय पर कितनी चोट पहुँचती है, यह कोई मातृ-हृदय ही समझ सकता है।

ललित भोजन करके उठा। ठीक उसी समय ललित की माँ से मिलने के लिए दुलारी आई। ललित की माँ ने आश्चर्य से दुलारी की तरफ देखते हुए पूछा—तू कब आई दुलारी—साथ में यह तेरा लड़का है क्या?

अभी दो घंटे हुए हैं। आपसे भेंट करने आई हूँ। बहुत दिनों से जी लगा था।

इतना कहकर दुलारी ने इशारा करते हुए अपने लड़के से कहा—प्रणाम कर।

बालक ने अपने नन्हे-नन्हे हाथों से ललित और उसकी माँ को प्रणाम किया। ललित ने बालक को गोद में उठाकर उसे चूम लिया। दुलारी चुप थी। ललित को भी बोलने का साहस न हुआ—जैसे दुलारी के प्रति उसने कोई भयंकर अपराध किया हो। उसने पूछा—इस बच्चे का नाम क्या है?,

धीमी आवाज से दुलारी ने उत्तर दिया—श्यामू।

श्यामू को गोद में लिये हुए ललित ने उससे कहा—चलो तुम्हें खिलौना दूँ।

बालक को लिये हुए ललित अपने कमरे में चला गया—अपनी आलमारी खोली। उसमें अभी तक उसके बचपन के खेले हुए खिलौनों में से एक 'मैजिक लैंटर्न' बच गई थी, जिसे लेकर उसने अपने बाल्य-जीवन में कितनी ही बार पर्दे पर बायस्कोप दिखलाया था। श्यामू को उसे देते हुए कहा—श्यामू, लो, यह बायस्कोप है। रात के समय एक पर्दा लगा देना। फिर इसकी बत्ती जलाकर इन शीशों को घुमाना, तो तुम्हें रंग-बिरंगी तस्वीरें दिखलाई देंगी।

श्यामू खिलौने को लेकर प्रसन्न हो गया। उसके मधुर हास्य में ललित को अपना बाल्य-जीवन उज्ज्वल आकाश की तरह दिखलाई देने लगा।

खिलौना लेकर श्यामू अपनी माँ के पास चला गया। दुलारी ललित की माँ के पास बैठी बातें कर रही थी। उसने श्यामू के हाथ में खिलौना देखकर पूछा—खिलौना लाये हो?

हाँ अम्मा, इसमें से तस्वीर निकलेगी।

दुलारी कुछ सोचने लगी—यह मैजिक लालटेन उसकी पूर्व-परिचिता थी। कितनी बार ललित ने घर में सबको रात्रि के समय इसी के द्वारा बायस्कोप दिखलाया था। पूर्वकाल की स्मृतियाँ काँटों की तरह चुभने लगीं।

ललित की माँ ने बातचीत के बीच में पूछा—तो क्या उन्होंने आत्महत्या कर ली थी?

'जी हाँ'—मस्तक नवाये, नम्रता से, दुलारी ने उत्तर दिया।

बड़ी भूल की—आत्महत्या करना महापाप है ! इस नन्हे-से बालक 'श्यामू' को अनाथ छोड़कर चले गये !

दुलारी की आँखें डबडबा गईं। बात का क्रम बदलने के लिए नई चर्चा छेड़ दी—ललित-भाई का विवाह कब होगा ? आपको भोजन बनाने में तो अब बड़ा कष्ट होता होगा माँ ?

क्या करूँ दुलारी, ललित मानता ही नहीं। वह अपने मन का है।

कुछ देर की बातचीत के बाद दुलारी उठकर घर चली। देखा, सामने के कमरे में ललित टहल रहा था। बड़ा साहस करके श्यामू के साथ वहाँ गई। पूछा—आजकल आप क्या कर रहे हैं ?

कुछ नहीं, अपने अन्तिम दिन काट रहा हूँ।

विवाह क्यों नहीं करते ? माँ कहती थीं कि बहुत समझाने पर भी विवाह नहीं करते। ऐसा क्यों ?

जब विवाह का समय था दुलारी, तब नहीं किया तो अब क्या ? और विवाह करने से लाभ क्या ?

ललित की इस बात पर दुलारी को रोमांच हो आया। ललित के प्रति उसके मन में बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई—साथ ही, बड़ी ग्लानि भी ! चुपचाप मस्तक नवाये खड़ी रही।

दोनों कुछ देर तक चुप थे। ललित ने एक आह खींचकर कहा—दुलारी, वह दिन याद है ?

दुलारी की आँखों में आँसू छलछला पड़े। वह कुछ उत्तर न

दे सकी। ठीक उसी समय श्यामू ने कहा—चलो अम्मा, आज कहाँ आ गई हो ?

श्यामू के लिए सब अपरिचित थे। दुलारी ने लम्बी साँस लेकर कहा—अच्छा, अब जाती हूँ।

अभी तो यहाँ रहोगी न ?

हाँ—अम्मा कहती हैं कि जब तक मैं जीती हूँ, तब तक न जाने दूँगी—मर जाने पर चली जाना।

तुम्हारी ससुराल में कौन-कौन है ?

देवर आदि सभी हैं।

श्यामू के पिता क्या नौकरी करते थे ?

अनाथ-आश्रम में मंत्री का कार्य करते थे।

ललित के नेत्रों के सामने वीणा की कहानी जैसे प्रत्यक्ष दिखलाई दी। उसका अनुमान ठीक था। उसने फिर पूछा—क्या उन्होंने एक स्त्री के कारण आत्महत्या कर ली थी ?

दुलारी ने मस्तक हिलाकर 'हाँ' का संकेत किया।

ललित—वह आश्रम की ही स्त्री थी ?

हाँ, उसी आश्रम में रहती थी। उसका नाम था 'वीणा'।

वीणा का नाम सुनते ही ललित का माथा सनसन करने लगा। उसकी आँखों के सामने अंधकार छा गया। पूछा—क्या उसका नाम 'वीणा' था—तुम्हें ठीक मालूम है ?

हाँ, 'वीणा' ही नाम था।

यह कहकर दुलारी ध्यान से ललित की तरफ देखने लगी। कुछ ठहरकर पूछा—क्या आप उस स्त्री को जानते हैं ?

दुलारी से असल बात छिपाते हुए ललित ने कहा—नहीं तो; इसी तरह पूछता रहा। मैंने अपने एक मित्र से यह कहानी सुनी थी; किंतु विश्वास नहीं होता था।

इसके बाद ललित कुछ बिचार करने लगा। दुलारी चुपचाप अपने घर चली गई।

ललित के मन में वीणा के प्रति बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। सोचने लगा—क्या दुलारी के प्रति मेरा यही कर्तव्य है कि वीणा के यहाँ मैं अब भी जाऊँ, और उसे अपने भोग-विलास की एक मूर्ति समझूँ? नहीं, यह मेरे लिए अनुचित है।

बहुत विचार करने के पश्चात् ललित ने निश्चय किया कि अब वीणा के यहाँ कभी न जाऊँगा। सुख की कल्पनाओं का एक बार फिर अन्त होने लगा। उसका जीवन फिर परिवर्तन खोज रहा था।

इधर कई दिनों के संसर्ग से ललित के साथ श्यामू बहुत हिलमिल गया। वह ललित के साथ सायंकाल बाजार जाता। ललित नित्य उसके लिए एक खिलौना खरीद देता।

एक दिन श्यामू ने पुकारा—मामाजी, मैं आऊँ?

ललित देखने लगा। मन में एक तरह की लज्जा अनुभव करने लगा। फिर सम्हलकर कहा—आओ, बाजार चलूँगा।

श्यामू चला आया। ललित ने प्यार की आँखों से देखते हुए पूछा—क्यों श्यामू, तू मुझे 'मामाजी' क्यों कहता है?

तो क्या कहूँ? नानी ने तो बताया है।

ललित ने कुछ उत्तर नहीं दिया। अनिच्छा से मुस्कुराकर रह गया। श्यामू पर दिन-दिन उसका स्नेह बढ़ता ही चला गया।

११

ललित का मित्र-मंडल भी टूट गया था। सन्तू बाबू ने अपना सब धन नष्ट करके एक रियासत में नौकरी कर ली थी। और सब लोग भी बाहर चले गये थे। हाँ, कभी-कभी देवनाथ से मुलाकात हो जाया करती थी।

ललित अपने पहले और अब के विचारों की तुलना करके देखता कि उसके जीवन का पतन हो रहा है—उसके सिद्धान्त और विचार नवयौवन के आवेश में नष्ट हो रहे हैं—उसका मानसिक ह्रास होता जा रहा है।

अपने विलासी मित्रों के जीवन से संसार की विचित्र दशा का उसने बहुत-कुछ अध्ययन किया था। इसी लिए उसके परिणाम और यथार्थ सुख के अन्तर का उसे अनुभव होने लगा। दुलारी का पवित्र प्रेम फिर उसे स्वर्ग की कल्पना की भाँति मालूम पड़ने लगा।

इसी तरह और कई मास चले गये। ललित कभी श्यामू को पढ़ाता, कभी उसके साथ बातें करता, और कभी प्यासी आँखों से दुलारी को देखता—यही थी उसकी दिनचर्या।

मित्र-मंडली टूट ही गई थी; देवनाथ का भी बहुत दिनों से पता न था—एकाएक सुख की कल्पनाओं का अन्त हो जाने के कारण कभी-कभी वह घबड़ा उठता था।

अभी विचार करते-करते ललित ने निश्चय किया कि आज बायस्कोप देखने चलेंगे। बायस्कोप देखने जा ही रहा था कि मार्ग में देवनाथ के एक मित्र मिले। ललित ने पूछा—कहिये, आज-कल देवनाथ बाबू कहाँ हैं, दिखलाई नहीं देते?

वह तो बहुत बीमार हैं। उन्हें क्षय-रोग हो गया है। अस्पताल में ही पड़े हैं।

क्या अस्पताल में ही उनका इलाज होता है ?

हाँ—और उनकी देखरेख करने वाला कौन है ?

ललित को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। देवनाथ एक निष्कपट मनुष्य था। किसी से उसका द्वेष नहीं था। ललित को उसका स्वभाव बड़ा प्रिय था। उसने मन में सोचा कि एक दिन अस्पताल चलकर देवनाथ को अवश्य देखना चाहिये।

बायस्कोप देखकर ललित घर लौटा। बार-बार उसे देवनाथ की बीमारी का ध्यान हो आता। दूसरे ही दिन प्रातःकाल वह अस्पताल में गया। वहाँ एक कमरे में देवनाथ पड़ा था। उसकी दशा देखकर ललित की आँखों में आँसू भर आये। रुँधे कंठ से पूछा—कैसी तबीयत है ?

अब बचने की आशा नहीं है !

ऐसा खयाल क्यों करते हो ?

नहीं, सिविल-सार्जन ने कह दिया है कि फेफड़े में बहुत-से छेद हो गये हैं। यह क्षय-रोग की अन्तिम अवस्था है।

मेरा तो दिल कहता है कि तुम शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे।

अब अच्छा होकर क्या करूँगा ललित ? इस जीवन-रूपी नाटक का खूब अभिनय देख लिया—अब इच्छा भर गई। मुझे अपनी मृत्यु का भी दुख नहीं है। एक दिन डाक्टर साहब से कहा था कि देखिये, अब मेरा रोग तो असाध्य है ही, आप कभी-कभी एकाध 'पेग' ले लेने की आज्ञा दे दें। इस पर वह हँसने

लगे। बोले, तुम्हारे ऐसा विचित्र मनुष्य आज तक मैंने नहीं देखा था। लेकिन यह कहकर भी मेरी बातों पर उन्होंने कुछ खयाल जरूर किया—अब वह मुझे एक ऐसी दवा देते हैं, जिससे मैं कुछ देर तक बेहोश रहता हूँ, उस दवा का कुछ नशा बना रहता है।

यहाँ पर तुम्हारी तबीयत कैसे लगती होगी? अकेले पड़े रहते हो?

यहाँ पर भी मुझे देखने के लिए बहुत-से मित्र, सम्बन्धी, परिचित आदि आ जाते हैं। अभी उस दिन कई वेश्यायें आई थीं। डाक्टर साहब उन्हें आज्ञा नहीं देते थे; किन्तु मेरे बहुत अनुरोध करने पर आखिर दे दी। वीणा भी आई थी—बहुत देर तक बैठी। तुम्हें भी पूछती थी कि आज-कल उनके दर्शन नहीं होते। कहती थी, अब वेश्या-वृत्ति छोड़ दूँगी—इस पतित जीवन से बड़ी घृणा हो रही है।

तुम जहाँ रहते हो, एक जलसा बना लेते हो।

यह सब ईश्वर की कृपा है, और इस संसार में है ही क्या—यह कहते हुए देवनाथ अपनी छाती पर हाथ रखकर कराहने लगा। व्यथित कंठ से बोला—अब दर्द हो रहा है ललित! इधर कई दिनों से रोग बहुत बढ़ गया है।

अच्छा तो मैं अब जाऊँ?

हाँ, जाओ, फिर कभी दर्शन देना।

अवश्य आऊँगा, मेरे लायक जो काम हो, कहो।

कृपा सदैव रखना, और क्या काम है। हाँ, हो सके तो मेरे लिए एक बोतल लेते आना।

चुप रहो, ऐसी बातें न करो—कहकर ललित घर चला आया। वीणा के विचारों को सुनकर कुछ देर के लिए ललित का मस्तिष्क चंचल हो उठा।

देवनाथ की एक-एक बात ललित को याद आने लगी। उसकी इच्छा हुई कि एक बार फिर जाकर देवनाथ से बातें कर आऊँ। फलतः वह दूसरे दिन फिर गया।

देवनाथ आँखें बन्द किये पड़ा था। कुछ देर बाद जब उसकी आँखें खुलीं, तो ललित को देखकर उसने पूछा—तुम कब आये भाई ?

थोड़ी देर हुई—तुम सो रहे थे, इसलिए जगाया नहीं।

बड़ा सुन्दर स्वप्न देख रहा था !

क्या देख रहे थे ?

देखता था कि मेरी स्त्री सामने खड़ी पूछ रही है कि तुम्हारी तबीयत कैसी है। मैं कह रहा हूँ कि देह में बड़ा दर्द हो रहा है। वह बैठकर मेरी देह दबाने लगी है, इतने में मेरी आँखें खुल गई हैं, तो देखा कि तुम बैठे हो।

स्वप्न में कभी-कभी बड़े विचित्र दृश्य दिखलाई दे जाते हैं।

आज-कल मुझे अपने पूर्व-काल की सब बातें स्वप्न में दिखलाई देती हैं। ललित ! मुझे मालूम पड़ता है कि अब मेरा अन्तिम समय आ गया। अब मैं बहुत जल्द इस संसार से बिदा हो जाऊँगा।

तुम ऐसी बातें क्यों सोचते हो देवनाथ ?

मुझे इन बातों से दुख नहीं होता—मैं इस संसार से हँसता हुआ उठ जाऊँ, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है ललित। अब

इस संसार में मन नहीं लगता। मेरा जीवन अब मेरे लिए बोझ हो गया है।

ललित चुपचाप सुनता रहा—जीवन के अन्तिम परिणाम का दृश्य देखकर उसका हृदय बड़ा व्यथित हो रहा था। उसे यह मालूम पड़ने लगा कि जीवन एक कोलाहल है, और संसार वायु का एक झोंका है। उसकी आँखों में आँसू भरे थे।

उसी समय डाक्टर ने कमरे में प्रवेश किया। देवनाथ ने ललित की तरफ देखते हुए, जोर से आह खींचकर, आँखें बन्द कर लीं। क्षण-भर में उसका शरीर रोग-शय्या पर तड़पने लगा।

डाक्टर ने आश्चर्य से उसकी नाड़ी देखी। उस समय देवनाथ के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे!

डाक्टर ने कहा—आज बेचारा सचमुच चला गया! इसके ऐसा रोगी आज तक मैंने अस्पताल में नहीं देखा था।

ललित ने आश्चर्य से डाक्टर की तरफ देखते हुए पूछा—क्या वास्तव में अब प्राण नहीं हैं?

नहीं.........यह तो कई दिन पहले ही हम लोगों ने समझ लिया था। शराब की गर्मी से इसका हृदय जल गया था—खून पानी बन गया था। एक दिन हम लोगों ने पूछा था कि इतनी शराब तुम क्यों पीते थे, तो इसने उत्तर दिया था कि शराब ही मेरा जीवन था—मुझे अपने जीवन की कोई चाह नहीं थी—इसी लिए छूटकर शराब पीता था, और उसी से मुझे कुछ शान्ति मिलती थी!

ललित ने रुँधे कंठ से कहा—इसके ऐसा मनुष्य मैंने नहीं

देखा, सदैव प्रसन्न रहता था। अभी-अभी बातें कर रहा था कि मेरा जीवन अब मेरे लिए बोझ हो गया है।

डाक्टर ने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—स्वभाव का बड़ा अच्छा था। इस भीषण रोग में भी मैं सदा इसे हँसकर बातें करते देखता था।

एक रत्न था—कहकर ललित अपने घर चला आया।

डाक्टर ने देवनाथ के एक सम्बन्धी को अन्तिम क्रिया करने के लिए सूचना भेज दी।

अभागा देवनाथ सदैव के लिए संसार को आखिरी सलाम कर अपनी दिलचस्प कहानी छोड़ गया!

१२

ललित कई दिनों से उदास रहा करता था। श्यामू ने अपनी माँ से जाकर कहा था, मामाजी आजकल हँसते-बोलते नहीं। अतएव दुलारी आई। ललित अपनी शय्या पर लेटा हुआ था। मध्याह्न-काल था। दुलारी ने पूछा—आपकी तबीयत कैसी है?

दुलारी की तरफ देखते हुए ललित बोला—तबीयत तो कुछ अच्छी है।

कुछ उदास देखती हूँ।

यह उदासी मेरे भाग्य में ही है!

ऐसा आप क्यों सोचते हैं?

तबीयत इतनी घबड़ा जाती है कि कभी-कभी इच्छा होती है—इसी बरामदे पर से कूद पड़ूँ।

ऐसी बातों पर मनुष्य का ध्यान स्वप्न में भी न जाना

चाहिये—मानसिक विकलता के कारण कभी-कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है; किन्तु उस पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

मेरे जीवन में सिवा दुखमय विचारों के अब बचा ही क्या है ?

इस संसार में मेरा कोई न हुआ—जिसके ऊपर अटल विश्वास था, वह भी अपना न हुआ।

यह आपने कैसे समझा ?

अपने मन से !

नहीं, ऐसा नहीं समझना चाहिये।

विरक्त भावना के आवेश में ललित ने दुलारी के प्रति बड़े कठोर अस्त्र का प्रयोग किया था। दुलारी कुछ विचार करने लगी—उसकी आँखें भर आईं। उसने फिर कहा—संसार में मनुष्य सोचते कुछ हैं, होता कुछ और है। यह ईश्वरीय लीला है ! भाग्य का खेल है ! मनुष्य का कोई दोष नहीं है।

ललित ने कोई उत्तर नहीं दिया। दुलारी ललित की माँ के पास चली गई—वह गृहस्थी का कार्य कर रही थीं। दुलारी ने कहा—घर का बहुत काम आपको करना पड़ता है।

क्या करूँ बेटी, इस लड़के से तबीयत बहुत ऊब गई है, दिन-पर-दिन यह अपने मन का होता जाता है। मैंने तो विशेष बोलना तक छोड़ दिया है, क्या करूँ !

दुलारी ने कहा—क्या आपकी बात नहीं मानते ?

न जाने कितने रुपये नष्ट कर दिये। घर-गृहस्थी की कोई चिन्ता है ही नहीं—अपने बड़ों का नाम भी डुबो दिया !

दुलारी चुपचाप सुन रही थी। ललित भी छिपकर सुन रहा

था। अपने कमरे के पास से ही बोला—मैं सब सुन रहा हूँ, क्यों माँ, मेरी शिकायत हो रही है ?

नहीं, तेरी प्रशंसा हो रही है !

दुलारी मुस्कुरा रही थी। ललित की माँ ने फिर कहना आरम्भ किया—देख दुलारी, मेरी वृद्धावस्था हुई, मेरा क्या ठिकाना है—कब तक रहूँगी—आज हूँ, कल नहीं ! मेरे न रहने पर यह गृहस्थी मिट्टी में मिल जायगी। इच्छा थी कि कुछ दिन तीर्थयात्रा करती; मगर छुट्टी कहाँ मिलती है। मोह-जाल में बँधी हूँ।

ललित ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—चलो अम्मा, मैं तुम्हें तीर्थयात्रा करा लाऊँ।

इसी लायक होते, तो इतना रोना काहे का था। मैं न रहूँगी, तब याद करोगे।

कुछ देर तक बातें करके दुलारी चली गई। बातचीत के कारण ललित के विचार भी कुछ शान्त हुए।

उस दिन शायद कोई पर्व था। सब लोग गंगा-स्नान करने जा रहे थे। ललित भी गंगा-स्नान करके घाट पर से उठ रहा था। इतने में देखा कि वीणा के साथ कई वेश्याएँ स्नान करने के लिए आ रही हैं। उनके साथ आशिक-मिजाजों का एक काफला भी था। कोई कह रहा था—यार ! गंगा-स्नान से इन रंडियों को कौन-सा पुण्य मिलता होगा ? इस पर एक दूसरा कह उठता था—अरे यार, यहाँ ये पुण्य करने थोड़े आती हैं, अलबत्ता यहीं से शिकार फँसाकर ले जाती हैं !

वीणा अपनी मस्तानी चाल से धीरे-धीरे आ रही थी। उसके पैर में मखमली चट्टी थी। धानी रंग की झीनी साड़ी—किनारे-किनारे ज़री का काम! ऊपर से काला दुशाला! बड़ी ही अनूठी फबन थी! उस समय वह सौन्दर्य की रानी-सी दिखाई देती थी। सभी के नयन उसी की तरफ थे, और उसके चपल नयन भी चारो तरफ चाकू चला रहे थे।

घाट पर बैठे हुए घाटिए उछल-उछलकर पुकार रहे थे—इधर ही आइये बाईजी, यहाँ नहाने का बड़ा सुभीता है।

ठीक उसी समय वीणा की दृष्टि ललित पर पड़ी। वह एक टक देखने लगी। ललित ने केवल एक बार उसे देखकर अपनी दृष्टि फेर ली—स्नानार्थी मनुष्यों के कोलाहल की ओर देखने लगा। साथ में नौकर-चाकर थे—श्यामू भी स्नान करने आया था।

अहा! उस भोले-भाले बालक का सौन्दर्य! चेहरे पर श्री बरसती थी—बड़ी निर्मल कान्ति थी! गौर वर्ण, घुँघराले बाल, खिली हुई आँखें, चमकते दाँत, पतले होंठ, छरहरा बदन, ऊँचे ललाट पर रोली की एक लाल बिन्दी! बड़ी सुहावनी छबि थी! जिधर देखता, लोग निहाल हो जाते। जिधर जाता, टकटकी बँध जाती!

श्यामू का हाथ पकड़े हुए ललित कुछ शीघ्रता से आगे बढ़ा; क्योंकि वीणा आगे से उसी ओर आ रही थी। श्यामू और वीणा को एक स्थान पर देख ललित आँख बचाकर सोचता जाता था—वीणा का यह वही सौन्दर्य है, जिसके कारण श्यामू के पिता ने आत्महत्या की थी! और अब वही रूप संसार में रुपयों के मोल बिक रहा है।

किन्तु इतना ज्ञान होते हुए भी ललित का मन वीणा के रूप की ओर आकर्षित होता जा रहा था। वीणा की तरफ देखते रहने की उसकी इच्छा होती थी—मन चंचल हो रहा था!

वीणा को ललित की तरफ देखते देखकर कितने लोग ललित की तरफ देख रहे थे। किन्तु ललित वहाँ रुका नहीं, सीधे घर चला आया। फिर भी वीणा के बंकिम कटाक्ष ने एक बार पुनः उसके हृदय में कोलाहल उत्पन्न कर दिया। घर की छत पर आकर टहलने लगा।

जाड़े का अन्त था। एकाएक आकाश में बड़े जोर की सन-सनाहट सुन पड़ी। नज़र उठाकर देखा, तो सुदूर आकाश-तल पर चील की तरह एक हवाई-जहाज़ दीख पड़ा। धीरे-धीरे उसके वेग की ध्वनि सघन होती आ रही थी। उस ध्वनि को सुनकर सब लोग अपनी-अपनी छत पर निकल आये। क्षण-भर में निकट आ जाने से उसका बड़ा आकार साफ दीखने लगा—उसकी घनघोर घरघराहट से कान भर गये।

दुलारी भी श्यामू के साथ छत पर खड़ी होकर हवाई-जहाज देख रही थी। श्यामू ने पुकारकर कहा—मामाजी, देखो हवाई-जहाज़!

ललित का मन स्वयं हवाई-जहाज हो रहा था। दुलारी की तरफ वह देख रहा था। दुलारी मुस्कुरा रही थी। एक ओर वीणा का कलंकित सौन्दर्य, और दूसरी ओर दुलारी का पवित्र सौन्दर्य—मन-ही-मन दोनो की तुलना कर रहा था।

दूध और मट्ठे में, चटक-मटक और भोलेपन में—कितना अन्तर है! फिर भी वीणा की सौन्दर्य-शक्ति ललित को अपनी तरफ

खींच रही थी। किन्तु दुलारी के पवित्र प्रेम की भावना उसके चरित्र की रक्षा कर रही थी। कभी उसको बुरी भावनाएँ घेर लेतीं, और कभी दूसरे ही क्षण अपने पवित्र आदर्श पर ध्यान जाते ही उसकी कुभावनाएँ बदल जाती थीं। बस इन्हीं विचारों के कारण वह अपने सुख-दुख का अनुभव करता था।

इसी तरह ललित का दिन कट रहा था।

उधर वीणा की भी दशा विचित्र थी। एक बार उसे अपने जीवन और व्यवसाय पर घृणा होती; किन्तु फिर सुख-विलास की लालसा में वह सब कुछ भूल जाती। उसने भी मानों प्रेम का भंडार खोल दिया था। महन्तजी अब उसको छोड़ चुके थे। कारण, उनके पास धन नहीं था—अब वीणा के यहाँ उनका कोई आदर नहीं था। उनके ऐसे-ऐसे कितने वीणा के द्वार को खटखटाकर चले गये। वीणा को भी नित्य नया-नया रंग देखने में बड़ी प्रसन्नता होती। वह सब तरह से सुखी हो रही थी। अब उसके हृदय में धन का कोई मूल्य नहीं था, क्योंकि बिना परिश्रम और उद्योग के ही उसके यहाँ रुपयों का ढेर लगा रहता था।

१२

होली के बाद बुढ़वा-मंगल का मेला था। यह काशी का एक प्रसिद्ध मेला होता है। इस मेले में शहर के जितने रईस, बदमाश और आशिक-मिजाज हैं, अपनी-अपनी नाव सजाते हैं, और उस पर वेश्याएँ जाती हैं।

वीणा को अपने कच्छे पर ले जाने के लिए बहुत-से लोग

उत्सुक थे। नगर के एक प्रसिद्ध धनी के बजड़े पर वीणा ने गाना स्वीकार किया।

रात्रि का समय था। हल्की चाँदनी छिटक रही थी। गंगा की लहरें धीरे-धीरे बह रही थीं। चारो तरफ सैकड़ों सजीले कच्छे इधर-उधर तैर रहे थे। उन पर गैस की रोशनी चमक रही थी। घाटों पर भीड़ का कोलाहल हो रहा था। किसी बजड़े पर वेश्या का गान हो रहा था, कहीं हारमोनियम का मधुर सुर हवा में गूँज रहा था, कहीं तबले की ठनक रात्रि की निस्तब्धता भंग कर रही थी। जिस कच्छे पर कोई प्रसिद्ध वेश्या अलापती, उसी के साथ सैकड़ों किश्तियाँ लहासी बाँध-बाँधकर डट जातीं—सहस्र-सहस्र नयन एकही सौन्दर्य-बिन्दु पर केन्द्रित हो जाते—एक साथ ही हजारों कान एक ही स्वर-लहरी में बहने लग जाते। बजड़ों का झूमड़ गंगा के गम्भीर वक्षस्थल पर सौन्दर्य-संगीतमय आनन्द-तरंगमय प्रकाश-पुंजपूर्ण रमणीय द्वीप के समान शोभायमान दीख पड़ता!

सहसा गंगा की बीच धारा में एक विशाल बजड़े पर गाना होने लगा। सब नावें उधर ही बढ़ीं। देखते-देखते सैकड़ों नावों ने उसे घेर लिया—घनघोर झूमड़ बँध गया! 'बाँध लहासी, काट लहासी, वाह राजा, युग-युग जीते रहो, दूध-बतासा पीते रहो' की धूम मच गई!'

कुछ देर में सब लोग एकाग्रचित्त हो गये। वीणा अपने रत्न-जटित स्वर्णाभरणों से लदी खड़ी मुस्करा रही थी—हजारों आँखों की बिजली खींचकर उसकी सौन्दर्य-गर्व-गरिमा प्रति क्षण प्रज्वलित हो उठती थी—मुखड़ा देदीप्यमान हो जाता था!

नावों का झमड़ बीच धारा में धीरे-धीरे बह रहा था। पान और मिठाई की दूकानें नावों पर चक्कर काट रही थीं। एकाएक वीणा गुनगुनाई, मानों वंशी के एक ही छेद में किसी सुकुमार कंठ ने धीरे से बड़ी दर्द-भरी सुरीली फूँक भर दी! एक साथ ही हजारों हाथ उठकर 'चुप-चुप' का संकेत करने लगे। इस समय अगर आसपास के किसी बजड़े पर कोई दूसरी वेश्या गाने लगती, तो 'चुप रहो—चुप रहो' की कर्कश ध्वनि करके लोग उसे गाने ही न देते थे।

अपनी सफलता पर वीणा मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी। लोगों की लगन देख वह और भी उत्साह से गाने लगी। नीचे निर्मल गंगा और ऊपर शीतल वायु की लहरें संगीतमयी हो उठीं। चारो तरफ से वाहवाही की आवाज आने लगी।

एकाएक वीणा सामने की एक नाव की तरफ देखती हुई गाने लगी। उस पर ललित बैठा था। अपने एक मित्र के बहुत अनुरोध करने पर वह मेला देखने गया था। वीणा ने ललित को देख लिया; ललित ने भी उसे पहचान लिया। वीणा बार-बार ललित की तरफ देखने लगी। वीणा की इस सफलता पर ललित आश्चर्य कर रहा था। इतने में ललित की नाव पर बैठा हुआ कोई आदमी बोल उठा—वाह बाईजी! खूब!!

इस पर वीणा ने बड़ी अदा से झुककर सलाम किया। उस समय ऐसी ही सलामी पर कितने लोग अपने को बड़ा भाग्यशाली समझते थे, और कितने अभागे तो ऐसी सलामी के लिए उत्सुक ही बने रह जाते थे! एक वीणा, और उसके चाहने वाले अनेक!

जिस तरह उपवन में खिली हुई एक अधखिली कली, और उसके चाहक सैकड़ों भ्रमर !

ललित के मन में यह बात उत्पन्न हुई कि आह ! जिस वीणा के चाहने वाले इतने अधिक हैं, वही वीणा कितनी नम्रता से मेरी उपासना करती है। फिर भी मैं उसके यहाँ नहीं जाता, उसके यहाँ जाने में मैं क्यों इतना घबड़ाता हूँ; क्या दुलारी के विचार से ?

  

वीणा शिवजी का दर्शन करके लौट रही थी। देखा, सड़क पर लोगों की भीड़ लगी है—कोलाहल हो रहा है। भीड़ के बीच में एक आदमी खड़ा था। लोग उसे घेरे हुए थे। वह कुछ बड़बड़ाता था। लोग ताली पीटकर अट्टहास करते थे। कभी वह दौड़ने लगता, तो भीड़ उसके साथ चलती।

वीणा बड़े कुतूहल से देख रही थी। किसी ने हँसते हुए जोर से कहा, पागल है, पागल ! वीणा ने समझा, शायद कोई पागल ही है। तब तक वह पागल दौड़ते-दौड़ते वीणा के सन्मुख आ गया।

वीणा आश्चर्य से उसकी तरफ देखने लगी—उसका मस्तक घूमने लगा। उसने पहचान लिया। अपने मन में विचार करने लगी—नहीं, वह नहीं हैं। फिर दूसरे ही क्षण कहती—ठीक वही तो मालूम पड़ते हैं, जरा भी अन्तर नहीं है।

कुछ सोचती हुई वीणा पागल की तरफ बड़े ध्यान से देखने लगी। उस पागल में उसे महेन्द्र की सब बातें दीख पड़ीं। वह एक स्थान पर खड़ी थी। पागल ने उसकी तरफ मुँह बनाकर देखा, और फिर दौड़ा हुआ चला गया।

वीणा ने घर पहुँचकर कई नौकरों को उस पागल की खोज में भेजा। वे पागल के पास जाकर उसे देखने लगे। वह चुप था। एक नौकर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—मेरे साथ चलो, एक बड़ा जरूरी काम है।

वह मुँह बनाकर आँखें चढ़ाकर देखने लगा। तब फिर उस नौकर ने कहा—तुम्हें मिठाई मिलेगी।

उसने हाथ खींचकर कहा—अभी बहुत दूर जाना है।

कहाँ जाना है ?

बहुत दूर—वहाँ !

यह कहकर वह फिर दौड़ता हुआ चला गया। कोई उसे पकड़ नहीं सका। नौकरों ने आकर वीणा से कहा—वह पागल बड़ा विचित्र है। उसे बहुत समझाया, मगर नहीं आया।

वीणा ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—क्या कहने लगे ?

और कुछ नहीं; कहते रहे—बहुत दूर जाना है।

वीणा विचार करने लगी। महेन्द्र की प्यारी बातें और उस समय का उसके प्रेम का इतिहास वीणा की आँखों के सामने आ गया। वह बैठी-बैठी अश्रुपात करने लगी। नौकर-चाकर बड़े आश्चर्य में पड़े कि उस पागल से इनका क्या सम्बन्ध था।

वीणा को अपना पहले का जीवन बड़ा सुन्दर मालूम पड़ा—इस जीवन और उस जीवन में कितना अन्तर था, यह वह भली भाँति समझने लगी। कई दिन तक वह किसी से नहीं मिली। यदि कोई मिलने आता, तो नौकर से कहला देती—इस समय अवकाश नहीं है।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह प्रायः सोचा करती, मैं समाज को कोसती हूँ; मगर समाज ने मेरे साथ जितना अत्याचार किया है, उससे कम मैंने समाज के साथ नहीं किया है।

अब वह इने-गिने प्रेमियों से कभी-कभी मुलाकात कर लेती थी। लोगों से उसका व्यवहार बदल गया था, पहले-जैसा नहीं था। प्रेमियों की संख्या भी कम हो चली थी। उसका हृदय शून्य हो रहा था। कभी-कभी उसकी वेदना असह्य हो जाती थी। अब दिन-रात वह विचारों में लीन रहती।



एक दिन, एकाएक उसको ज्वर चढ़ा। रात-भर वह ज्वर के ताप से जलती रही। सबेरे उसने अपने शरीर की तरफ देखा, तो तमाम बदन में लाल-लाल दाने निकले थे। डाक्टर के आने पर ज्ञात हुआ कि बड़ी शीतला निकली हैं!

वीणा ने डाक्टर से कहा—आप मुझे जल्दी अच्छा कर दें, मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है—बड़ी ज्वाला है!

डाक्टर ने कहा—इस रोग में प्रायः दवा नहीं दी जाती।

वीणा—मुझे अच्छा कर दीजिये, और जितना रुपया कहिये, मैं आपको दूँगी।

डाक्टर ने रुपयों के लोभ से दवा दे दी। किन्तु उसी दवा के कारण शीतला का प्रकोप बहुत बढ़ गया। यहाँ तक नौबत आ गई कि उसके शरीर पर बड़े-बड़े छालों के सिवा कुछ न दिखलाई देता था। वह दिन-रात पड़ी-पड़ी आह-आह कराहती रहती। उसके नौकर-चाकर इस भयंकर रोग को छूत की बीमारी समझकर साथ छोड़ चले गये।

अब वीणा अकेली रह गई। कोई पानी देने वाला भी नहीं था। संयोग से किशोरी एक दिन वीणा को देखने आई। उसने देखा, वीणा के घर में एक आदमी भी नहीं है—अभी एक सप्ताह पहले यही मकान दिन-रात भरा रहता था; इसकी खिड़की से सदैव अट्टहास की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। किन्तु अब वह गुलजार चमन नहीं रहा!

किशोरी को वीणा की दशा पर तरस आ गया। उसने आँखों में आँसू भरकर पूछा—बहन वीणा! कैसी तबीयत है?

ज्वर की तीव्र वेदना में वीणा अचेत पड़ी थी। किसी की आहट पाकर आँखें खोलकर देखा, तो सामने किशोरी खड़ी थी। वह बड़ी करुण दृष्टि से देखने लगी!

किशोरी ने फिर पूछा—कैसी तबीयत है?

वीणा ने बड़े धीमे स्वर में कहा—बहुत खराब है!

क्या अब इस घर में तुम्हारा कोई साथी नहीं है? तुम अकेले कैसे पड़ी हो?

वीणा ने कराहते हुए कहा—सब छोड़ भागे! विपत्ति का साथी संसार में कोई नहीं होता!

अच्छा, मैं हूँ। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। घबड़ाओ नहीं। विपत्ति में ईश्वर को याद करना चाहिये।

वीणा ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से किशोरी की तरफ देखते हुए कहा—तुम्हारी बड़ी कृपा है बहन! अब मैं नहीं बचूँगी। मेरा रूप नष्ट हो गया। सारे शरीर में मानों आग लग रही है—रोम-रोम से चिनगारियाँ निकल रही हैं!

किशोरी ने ढाढ़स देते हुए कहा—तुम अच्छी हो जाओगी, घबड़ाओ मत। रूप नष्ट हो जाने से क्या, तुम्हें अब कमी किस बात की है ?

१४

ललित के यहाँ सत्यनारायण की कथा थी। उसी दिन उसके यहाँ पड़ोस की बहुत-सी स्त्रियाँ आईं—दुलारी भी श्यामू को लेकर आई थी।

पूजा समाप्त हुई। पूर्णिमा का चाँद उज्ज्वल बर्फ के गोले के समान नीले आकाश में शोभता था। गर्मी की रात थी; पर हवा बड़ी सुहावनी चल रही थी। ललित अपनी छत पर बैठा हुआ था।

श्यामू ने जिद करते हुए कहा—मैं भी ऊपर छत पर मामाजी के पास जाऊँगा।

विवश होकर दुलारी उसे ललित के पास पहुँचाने गई। बोली—यहाँ आने के लिए श्यामू बड़ा तंग कर रहा है।

क्यों ?—कहकर चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रकाश में ललित अपने पुलकित नेत्रों से दुलारी के सौन्दर्य को देखने लगा।

दुलारी फिर बोली—कहता है, ऊपर जाऊँगा।

तो तुम्हें मेरे पास आने में कोई संकोच मालूम होता है ?

दुलारी ने आँखें नीची करके उत्तर दिया—मुझे संकोच क्यों होगा ? मेरा बड़ा भाग्य जो आपसे कुछ देर बातें करने का अवसर मिल जाय।

श्यामू को अपनी गोद में बैठाते हुए ललित ने कहा—दुलारी ! मेरी आँखों में तुम वही हो।

दुलारी लम्बी साँस खींचकर पूर्णचन्द्र की ओर देखने लगी। श्यामू ने आश्चर्य से ऊपर उँगली उठाकर कहा—वो देखो, गुब्बारा उड़ रहा है !

सब लोग आसमान ताकने लगे। एकाएक ललित का ध्यान वीणा की तरफ गया। वह वीणा की बातें सोचने लगा।

कुछ देर चुप रहकर बोला—दुलारी, तुम्हारे पति ने जिस स्त्री के कारण आत्महत्या कर ली थी, वह इस समय वेश्या हो गई है !

दुलारी ने कहा—वह तो आश्रम में ही रहती है, वेश्या नहीं है। क्या आपने उसे वेश्या-रूप में देखा है ?

ललित लज्जित हो गया। वह अपने पाप को छिपा देना चाहता था। दुलारी को अपना मुँह दिखाने में जैसे उसे संकोच होने लगा। बड़े साहस से उसने कहा—मैं उसका गाना कई बार सुन चुका हूँ।

दुलारी ने फिर कुछ नहीं पूछा। कारण, ललित की माँ की बातों से ललित का बहुत-कुछ हाल उसको मालूम हो गया था। वह विचार करने लगी। तब तक उसके हाथ में हाथ डालकर श्यामू ने कहा—चलो अम्मा, अब नीचे चलूँगा।

ललित की ओर देखती हुई दुलारी जाने लगी। ललित छत पर टहल रहा था। उसी समय शिवालय की घड़ी में आठ बजा। वह विचार करने लगा—अभी तो आठ ही बज रहे हैं। चलूँ आज वीणा को देख आऊँ। बहुत दिन से उसको देखा नहीं है।

वह चल पड़ा। वीणा के मकान के पास पहुँचकर देखने लगा। मकान पर पहले-जैसी रोशनी नहीं थी। मकान में किसी की आहट भी नहीं मिलती थी। एक धुँधला लैम्प टिमटिमा रहा था। वह सीढ़ियाँ टटोलता हुआ डरते-डरते ऊपर गया। वहाँ देखा, कमरे में एक शय्या पर कोई पड़ा कराहता है, और उसके पास में एक स्त्री बैठी है। पुकारकर पूछा—क्या अब इस मकान में वीणा नहीं रहती है?

किशोरी ने पास आकर ललित का मुँह निहारते हुए कहा—वीणा यहीं है—बीमार है; बहुत दिन हो गये। आइये।

ललित ने आश्चर्य से जाकर देखा, शय्या पर वास्तव में वीणा शिथिल पड़ी थी। उसके अंग-प्रत्यंग फूट पड़े थे—बड़ा विकट रूप था! मन-ही-मन कहा—आह! इतना परिवर्तन! कैसा लुभावना रूप था! आज उसकी यह क्या दशा है! छिः! संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है—कुछ भी स्थिर नहीं है!

वीणा ने ललित की तरफ अधखुली आँखों से देखते हुए कहा—एक मास से कुछ अधिक हुआ, मैं इसी दशा में पड़ी हूँ। अब मेरे बचने की कोई आशा नहीं है।

वीणा की दुर्दशा देखकर ललित के मन में संसार की असारता पर बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। जो सौन्दर्य किसी समय अतुलनीय था, वह आज कैसा विकृत हो गया—यह देखकर ललित बड़ी गहरी चिन्ता में डूब गया। सोचने लगा—क्या सौन्दर्य इतना चंचल है—कमल के पत्ते पर अड़े हुए जल-बिन्दु से भी चंचल—तनिक हवा के झोंके से ढल जाने वाला? राम-राम! इस

शरीर का कोई भरोसा नहीं—कब इसकी क्या दुर्गति हो जायगी, कुछ पता नहीं। ठीक ही सन्त-महात्माओं ने बार-बार कहा है कि मानुष का चोला पाकर जो विषय-वासना में फँस जाता है, वह मणि को काँच से बदलता है। वास्तव में नर-देह की सार्थकता ईश्वर-भजन में ही है। उफ! कहाँ वह कंचन की काया, कहाँ यह मिट्टी का लोंदा! तेल-फुलेल की कितनी ही नदियाँ पी गया—साबुन के कितने ही पहाड़ चाट गया; फिर भी आज इस शरीर से दुर्गन्ध की लहर उमड़ रही है! कैसी तेरी क्रूर लीला है विधाता!

वीणा ने बेचैनी की करवटें बदलते हुए दर्द-भरी आवाज में कहा—इतने दिनों के बाद मैं आज कैसे याद पड़ गई? कहीं रास्ता तो नहीं भूल गये?

वीणा! अब तो जो कहो, सब ठीक। भले ही तुम विश्वास न करो; पर मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे यहाँ आने की मैं बड़ी चेष्टा करता था; किन्तु आ नहीं सकता था। आज बहुत साहस करके तुम्हारा समाचार लेने के लिए आया हूँ। न जाने क्यों, इधर कई दिनों से तुम्हारी सूरत दिन-रात मेरी आँखों में फिरा करती थी।

खैर, जो हो, मेरी दशा तो दिन-पर-दिन भयंकर होती जाती है। अब मेरा अन्त निकट है। ललित बाबू! इस जीवन में आपकी बड़ी उपासना की थी। आज अपने अंतिम समय में आपको देखकर मैं बड़ी प्रसन्न हूँ।

तुम्हारी दशा देखकर मुझे हार्दिक दुःख है वीणा! किन्तु क्या करूँ—पीड़ा बाँटी नहीं जा सकती। और जो मेरे लायक काम हो, कहो वीणा! मैं सब तरह से तैयार हूँ।

ललित बाबू ! आप देवता हैं, मैं पतिता हूँ। मैंने आपको भी पतित बनाना चाहा था—बड़ा उद्योग किया था; किन्तु सफल न हो सकी। अब आप मुझे क्षमा कीजिये। बोलिये, क्षमा करेंगे या नहीं ?

ऐसा न कहो। ईश्वर से क्षमा माँगो। मैं तो स्वयं एक पतित हूँ वीणा ! न जाने किसने मेरे चरित्र को अब तक सुरक्षित रखा। अच्छा, अब जाता हूँ—तुम्हारी प्राण-रक्षा का कोई प्रयत्न करूँगा।

वीणा कुछ बोल न सकी। अपनी आँखें खोलकर ललित को अच्छी तरह देख लिया। उसके देखते-ही-देखते ललित सीढ़ी से नीचे उतर गया।

दूसरे दिन ललित ने सुना—वीणा इस स्वार्थी संसार को छोड़कर चली गई ! सुनते ही दोनों हाथों से सिर थामकर बेसुध बैठ गया !

१५

वीणा के जीवन से ललित को बड़ी शिक्षा मिली। वह फिर अपने मन में विचार करने लगा—लोग सौन्दर्य से आकर्षित होते हैं। उसी को प्रेम का आधार कहते हैं। सांसारिक प्रेम सौन्दर्य से ही उत्पन्न होता है। किन्तु, क्या यह प्रेम वास्तविक है ? मनुष्य जिस सौन्दर्य का इतना भक्त होता है, वही एक दिन गलकर नष्ट हो जाता है। इसी सौन्दर्य के लिए कितनी हेजलिन, स्नो, पीयर्स-सोप, पाउडर, सुगन्धित तेल, सेण्ट, लोशन इत्यादि लगाते हैं—और उसी सौन्दर्य का अन्त इस बुरी तरह होता है ! देह जलाकर राख कर दी जाती है ! फिर यह सौन्दर्य-गर्व किस काम का ?

ललित यह सोचते-सोचते बड़ा उद्विग्न हो उठा। उसने दुलारी के द्वार पर जाकर श्यामू को पुकारा। कारण, श्यामू से कुछ देर तक उसका मन-बहलाव होता था। ऊपर से श्यामू ने कहा—आइये ऊपर, मैं अभी आता हूँ, खाना खा रहा हूँ।

ललित ऊपर चला गया। देखा, दुलारी श्यामू को भोजन करा रही है। दुलारी ने ललित की तरफ देखते हुए कहा—आइये, आप भी भोजन कर लीजिये।

नहीं, मैं खाना खा चुका हूँ।

मेरे कहने से कम-से-कम एक ही कवल खा लें।

मुझे कोई संकोच तो है नहीं दुलारी। अच्छा, तुम कहती हो, तो दे दो, खा लूँ।

दुलारी ने ललित के सामने थाली रख दी। वह भोजन करने लगा। दुलारी के हाथ का बनाया हुआ भोजन उसे बड़ा प्रिय लगा। पूछा—आज तुम्हारी माँ कहाँ हैं?

वह एक सम्बन्धी के यहाँ गई है—आती होगी।

दुलारी! एक बात का ठीक उत्तर दोगी?

क्या—पूछिये।

मेरे प्रति तुम्हारा पहले–जैसा ही भाव है?

यह आप स्वयं समझ सकते हैं। मैं क्या उत्तर दूँ?

नहीं दुलारी, वह शैशव का मधुर प्रेम था। उसके बाद ही युवावस्था में हम दोनों का प्रवेश हुआ। उस समय हम-तुम एक थे—दो शरीर एक प्राण था; किन्तु समाज के बन्धन में पड़कर तुम दूसरे की होकर चली गईं। फिर भी तुम्हारे प्रति मेरा वही

भाव रहा। मैं जानता था कि तुम्हारे साथ प्रेम करना अग्नि में जलना है। किन्तु हृदय नहीं मानता था। और, वही एक कारण था दुलारी, कि मैंने अविवाहित रहने का प्रण कर लिया था। मेरे जीवन के प्रेम का इतिहास उसी दिन समाप्त हो चुका था—जिस दिन तुम्हारा विवाह हुआ था।

बड़े आवेग से ललित कहता गया। दुलारी चुपचाप सुनती रही। फिर आँखों में आँसू भरकर बोली—मेरे कारण ही आपका जीवन नष्ट हो गया। मैं कभी-कभी आपका ध्यान करके बहुत देर तक रोती हूँ। मगर विवश थी, क्या करती! समाज के बन्धन ने आपका जीवन नष्ट कर दिया—मैं तो अभागी थी ही, मेरा क्या!

इस समय मेरी अवस्था अठाइस वर्ष की हुई, और तुम्हारी भी—मैं समझता हूँ—पचीस की होगी?

हाँ, छबीस वर्ष की हो गई।

देखो, कितना समय बीत गया दुलारी! देखते-देखते दिन बदल गये। दिन बीतते कितनी देर लगती है। अहा! वे दिन कितने सुहावने थे!

दुलारी ने मन्द स्वर से कहा—अह! वह जीवन की तरंग ही दूसरी थी।

क्यों दुलारी, क्या फिर वैसे दिन नहीं हो सकते?

उहुँ! वह उमंग, वह तरंग, वह अभिलाषा—अब कहाँ?

और अगर अब मैं तुमसे कहूँ कि तुम मेरी हो जाओ—मेरे साथ चलो, तो?

दुलारी के लिए यह बड़ा जटिल प्रश्न था। वह अपने मन में

विचार करने लगी कि क्या उत्तर दूँ। ललित बड़ी उत्कंठा से उसकी ओर देख रहा था। वह बोली—जिस बात को मैंने और आपने उस समय बचाया, उसे अब क्या करें। मेरी देह दूसरे की हो गई। हाँ, आत्मा आपके लिए अवश्य है। आपके प्रति मेरी वही श्रद्धा है। अब आपके साथ मेरे चलने से, हम और आप—दोनों—सदैव के लिए कलंकित हो जायँगे, और फिर इतनी अवस्था में! समाज हँसेगा। माँ का जीवन रोते-रोते अन्त हो जायगा।

ललित चुपचाप सुनता रहा। उसने दुलारी की बातों को यथार्थ समझा। फिर कहा—दुलारी, तुम्हारी बात ठीक है; मैं भली भाँति समझता हूँ—यह प्रश्न ही मेरा अनुचित है; मगर मैं यों ही पूछता था, किसी खास मतलब से नहीं।

दुलारी फिर कहने लगी—मुझे अब भी आपके साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं है; किन्तु अब इससे कुछ लाभ नहीं। इतना जीवन कट गया, अब थोड़े समय के लिए क्यों अपयश लेना। वह सुख—वह हौसला अब नहीं रहा। अब तो उस सुख की आशा करना भी व्यर्थ है। जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं, न जाने कब इसका अन्त हो जाय।

ललित का ध्यान फिर वीणा की तरफ गया। वह दुलारी की बातों का अनुभव कर रहा था। उसी समय दुलारी की माँ आ गई। तब वह श्यामू को साथ लेकर अपने घर चला गया।

  

एक मास समाप्त हो गया। ललित निरुद्देश्य अपने जीवन को व्यतीत कर रहा था। दिन-रात वह घर पर ही रहता था। उसके

मन बहलाने का अब कोई साधन न था। दिन नीरस प्रतीत होते थे। कभी-कभी श्यामू आकर उसका मन बहला जाता था।

एक दिन ललित बैठा हुआ श्यामू को पढ़ा रहा था। उसकी माँ ने कहा—ललित ! आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं भोजन नहीं बनाऊँगी, बाजार से कुछ लाकर खा लेना।

क्या हुआ है माँ—कैसी तबीयत है ?

कुछ ज्वर-सा मालूम पड़ता है, सारे शरीर में दर्द हो रहा है !

डाक्टर को बुला लाऊँ ?

नहीं, कोई चिन्ता न करो, कल तक अच्छी हो जाऊँगी।

दूसरे दिन भी ललित की माँ का ज्वर न उतरा। वैद्य ने देख कर दवा भी दी। दुलारी भी देखने आई। ललित की माँ ने उससे बातें करते हुए कहा—दुलारी, ललित के लिए कुछ बना दो। जब से मैं बीमार पड़ी हूँ, वह कुछ नहीं खाता। हाय ! मेरे बाद उसकी कौन खबर लेगा !

दुलारी ने बड़े प्रेम और हर्ष से उसी समय ललित के लिए भोजन बनाया। कुछ देर के बाद उसने ललित से कहा—चलिये, भोजन तैयार है।

मुझे भूख नहीं है दुलारी।

उसी समय ललित की माँ ने कहा—बेटा, खा लो, दो दिन से तुम्हारा भोजन ठीक नहीं हुआ है। जाओ, थोड़ा भी खा लो।

माँ की बात सुनकर ललित भोजन करने चला गया। वह बड़ा उदास था। दुलारी ने थाली रखते हुए कहा—आप चिन्ता न करें, माँ शीघ्र अच्छी हो जायँगी।

मैं बड़ा दुखी हूँ दुलारी ! मैंने अपनी माँ को बड़ा कष्ट दिया है; पर उसके कारण मैंने कभी कष्ट नहीं उठाया है। मैंने अपना जीवन यों ही नष्ट कर दिया ! इस संसार में अब मेरा कौन है ?

इतना कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। दुलारी की भी आँखें डबडबा आईं। ललित भोजन करके उठ गया।

कई दिन के बाद एकाएक ललित की माँ की दशा बहुत खराब हो गई। ललित दिन-रात माता की शय्या के पास बैठा सेवा करता रहा। माता ने ललित के मस्तक पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—बेटा ललित, अब मैं नहीं बचूँगी। मैं बूढ़ी हो गई, अब कब तक रहूँगी ? हाय ! मेरे बाद तुम्हारा कौन खयाल करेगा ! तुमने विवाह भी नहीं किया ! मेरे बाद तुम बड़ा दुख उठाओगे।

माता की करुण वाणी से ललित का हृदय बड़ा व्यथित हो गया। वह एक नन्हे-से बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगा। सिसकते-सिसकते उसने टूटे स्वर में कहा—माँ, तुम अच्छी हो जाओ; फिर जो कहोगी, वही करूँगा।

किन्तु वह अब क्यों अच्छी होने लगी। रोयें गिराकर बोली—ललित, मुझे विश्वास है बेटा, अब मैं नहीं बचूँगी। लेकिन इतना कहे जाती हूँ, मेरे बाद अपना विवाह कर लेना। ईश्वर तुम्हें सुखी रखें, यही मेरा आशीर्वाद है। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूँ। मुझे ईश्वर इस समय शान्ति से मृत्यु दे रहा है। सनातन-धर्मानुसार मेरा क्रिया-कर्म करना। ईश्वर से मैं यह भी प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपने धर्म पर दृढ़ रहो।

ललित ने ढाड़स देते हुए कहा—माँ, तुम अच्छी हो जाओगी। ऐसा न कहो।

किन्तु ललित की बात झूठी हुई—बुढ़िया एक दिन अचानक चल बसी। ललित को विश्वास नहीं होता था कि माँ मर गई—बार-बार शव को देखकर रोने लगा! रोते-रोते कहता जाता था—माँ, अब इस संसार में मेरा कौन अपना है। तुम गई, सब सुख लेती गई! मेरा संसार सूना हो गया। तुम्हीं तक मेरे लिए संसार था। आज स्नेह का सोता सूख गया। अब यह जीवन मरुस्थल की तरह तपता रहेगा! हे ईश्वर! मुझे भी अब शीघ्र बुला लो। मैं इस संसार से घबड़ा गया हूँ।

कुछ देर बाद पड़ोस के लोगों के साथ माता का शव लेकर वह श्मशान पर गया और दाह-क्रिया करके अत्यन्त शोकाकुल होकर घर लौट आया। घर सूना था—कोई अब यह पूछने वाला नहीं था कि ललित, भोजन कब करोगे। घर की दीवारें काट खाये डालती थीं। आँगन में से माता के अविरल स्नेह की चाँदनी अस्त हो गई थी। वह हतचेत होकर 'माँ—माँ' कहते हुए रोने लगा।

उसी समय दुलारी ने आकर ललित को बहुत धैर्य दिया। अब प्रतिदिन वही अपने घर से भोजन बनाकर उसके लिए भेजती थी। श्यामू दिन-भर बैठकर उसका मन बहलाता था। किन्तु उसकी अन्तरात्मा की वेदना का दारुण-करुण विलाप कौन सुनता था!

अब तो दुलारी भी ललित के घर नहीं आ सकती थी। कारण, जब तक ललित की माँ जीवित थी, कोई यह नहीं कह सकता था कि दुलारी वहाँ क्यों जाती है। किन्तु अब ललित के

घर में कोई स्त्री नहीं थी, जिसके कारण दुलारी आती—अकेले सूने घर में जाना कलंक-जनक था। एक पुरुष और स्त्री के आन्तरिक प्रेम पर संसार हँसता है—वह दो हृदयों का प्रेम-मिलन सह नहीं सकता—वह प्रेम को जाति-पाँति के बन्धन में जकड़कर रखना चाहता है। किन्तु प्रेम तो मुक्त वायु की तरह स्वतंत्र है!

एक दिन ललित ने श्यामू से कहा—श्यामू, अपनी अम्मा को साथ लेकर कल सबेरे आना। उनसे कुछ बात करना है।

श्यामू ने पूछा—आज नहीं?

नहीं, इस समय रात हो रही है। कल सबेरे।

अच्छा, उससे आज ही कह दूँगा—कहकर श्यामू चला गया।

दूसरे दिन, प्रातःकाल दस बजे, ललित का भोजन लेकर श्यामू के साथ दुलारी आई। ललित ने कहा—दुलारी, तुम मेरे लिए बड़ा कष्ट करती हो।

नहीं, कष्ट कौन-सा है। अहोभाग्य कि इतना भी सुख नसीब हुआ। हाँ, आपने मुझे बुलाया है?

हाँ—तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा हुई।

अम्मा नहीं आने देती थीं। कहती थीं—उस घर में अब कोई स्त्री नहीं है, लोग देखकर हँसेंगे।

निरीह ललित के हृदय में वाण की तरह ये बातें चुभ गईं। उसने एक दर्द-भरी आह खींची। कुछ कह न सका। कुछ देर विचार करने के बाद बोला—दुलारी, इस पापी संसार से मैं बहुत घबड़ा गया हूँ। अब क्या करूँ—किस तरह अपने जीवन का शेष समय काटूँ?

अपने अन्तिम समय में आपकी माता ने आपसे कहा था कि मेरे मरने के बाद विवाह कर लेना। अब आपको उसका पालन करना चाहिये।

दुलारी, तुम भी कैसी बातें करती हो? जब माँ के सामने विवाह नहीं किया, तो अब क्या करूँगा। सुख के प्रलोभन से अब मैं बहुत दूर हूँ। मेरे लिए विवाह अब सपने की कहानी है।

दुलारी चुपचाप विचार करने लगी। वास्तव में बड़ी विचित्र परिस्थिति थी। ललित ने फिर कहा—दुलारी, मुझसे कोई अपराध हो गया हो, तो क्षमा करना। मैं बड़ा अभागा हूँ।

दुलारी ने समझा कि उसकी बातों से ललित के हृदय पर बड़ी चोट लगी है। बोली—आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं? घबड़ाइये नहीं। स्थिर-चित्त होकर विचार कीजिये। घर बसाइये। इसी में कल्याण है। अच्छा, अब जाती हूँ। घर पर अभी भोजन बनाना है। देर होने से माँ बिगड़ने लगेगी।

दुलारी चली गई। ललित विचारों की समाधि लगाकर बैठ गया। कुछ देर के बाद एक कागज पर कुछ लिखने लगा। फिर उसे एक बड़े लिफाफे में रखा। तब अपने कमरे की ओर बड़ी विरक्त दृष्टि से देखा। उसके इस तरह देखने से ऐसा ज्ञात होता था, मानों वह घर-द्वार से अन्तिम बिदा माँग रहा है। अपने ट्रंक, आलमारी, कपड़े, पुस्तकें—प्रत्येक वस्तु को भली भाँति देख लिया। बाद को केवल एक कुर्ता पहनकर, ताला-कुंजी के साथ, बाहर निकला। बाहर के दरवाजे में ताला लगाकर कुंजी

को उसी लिफाफे में बन्द कर दिया। इतना कर चुकने पर दुलारी के घर जाकर रुँधे कंठ से पुकारा—श्यामू!

उत्तर मिला—हाँ!

यहाँ आओ।

श्यामू उछलता हुआ नीचे आया। ललित ने उसके हाथ में वह लिफाफा देते हुए कहा—लो, तुम्हारे लिए इसमें एक श्लोक लिखा हुआ है। कल प्रातःकाल, सूर्योदय से पहले, इसको अपनी माता के सामने बैठकर पढ़ना।

श्यामू ने लिफाफा ले लिया। ललित जाने लगा। श्यामू ने पूछा—कहाँ जाते हैं?

बाहर जा रहा हूँ।

मैं भी चलूँगा।

नहीं, बहुत दूर जाना है; तुम थक जाओगे।

अच्छा, शाम को आपके साथ घूमने चलूँगा। तब बाजार में खिलौना भी लूँगा। हाँ!

ललित ने कुछ उत्तर नहीं दिया। अपनी राह चला गया।

  

निशा-सुन्दरी का वेश आज बड़ा करुणापूर्ण था। उसकी काली साड़ी सारे आकाश पर लहरा रही थी। कहीं-कहीं तारों के चमकीले बूटे झक-झक कर रहे थे।

श्यामू हाथ में पत्र लिये हुए अपनी माँ से कह रहा था—माँ, अभी तक मामाजी नहीं आये। आज मैं घूमने भी नहीं गया। कहाँ चले गये?

दुलारी भी विचार कर रही थी कि आज दिन-भर से कहाँ गायब हैं—क्या बात है ।

श्यामू ने फिर कहा—मुझे इस लिफाफे में बन्द करके एक श्लोक दे गये हैं । कल सबेरे इसे खोलकर पढ़ूँगा ।

दुलारी झट श्यामू के हाथ से लिफाफा लेकर देखने लगी । ध्यान से देखने पर उसे मालूम हुआ कि इसमें एक कुंजी भी है । उसे एक रहस्य मालूम पड़ा । तत्काल लिफाफा खोला । तब तक श्यामू ने कहा—अभी मत खोलो । कह गये हैं कि कल सबेरे खोलना ।

दुलारी ने श्यामू की बात पर ध्यान न देकर भीतर का कागज निकाला । आश्चर्य से देखा, एक बड़े कागज पर लिखा था—

मैं अपनी सब सम्पत्ति श्यामू को देता हूँ; क्योंकि मेरा इस संसार में कोई नहीं है, और मैं अब जाता हूँ—लौटकर फिर नहीं आऊँगा । दुलारी ! तुम भी मुझे भूल जाना । क्षमा ! बिदा !—'ललित'

इसके साथ—एक तालिका-समेत पूरा वसीयतनामा भी था ।

दुलारी ने अपनी माँ को सब पढ़कर सुनाया । दोनों बैठकर अश्रुपात कर रही थीं; पर श्यामू की समझ में कुछ नहीं आया ।

उस दिन से प्रायः श्यामू पूछा करता—माँ, मामाजी कहाँ गये—कब आवेंगे ?

उसके ऐसा पूछने पर दुलारी कुछ देर के लिए पूर्व-काल की घटनाओं को याद करके विकल हो जाती ।

रात में सोते समय श्यामू की नानी जब कहानी कहकर

उसको सुनाती थी, तब वह कभी-कभी पूछ बैठता था—नानी, मामाजी लौटकर नहीं आये ।

हाँ बेटा, न जाने कहाँ चले गये । तुम्हारे लिए वह अपना सब कुछ दे गये हैं ।

क्या दे गये हैं नानी ?

रुपया, मकान, जमींदारी—जो कुछ उनके पास था, अब सब तुम्हारा है ।

मगर मेरे लिए खिलौना नहीं लाये, बहाना करके चले गये !

  

कई मास के बाद, एक दिन दुलारी ने ललित का मकान खोल कर देखा—सब सामान बिखरा पड़ा था । उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली । बार-बार वह यही विचार करती कि मेरे ही कारण ललित का जीवन नष्ट हो गया—बसा-बसाया घर उजड़ गया ! आखिर घर छोड़ चले ही गये !

ऐसी ही बातें सोचते-सोचते, आँसू पोंछती हुई, वह ललित के कमरे में गई । देखा, दीवार पर ललित का एक फोटो टँगा हुआ है ।

वह फोटो उस समय का था, जब ललित स्कूल में पढ़ता था। तब से कितना समय बीत गया—संसार ही दूसरा हो गया !

बहुत देर तक उस फोटो को वह देखती रही । उसे ऐसा जान पड़ा, मानों ललित उससे सन्मुख बातें कर रहा है ।

उस दिन से नित्य प्रातःकाल, दुलारी माला-फूल लेकर ललित के मकान का ताला खोलती, और उस फोटो की पूजा करके चुप-चाप लौट आती ।

इसी तरह बहुत समय बीत गया। वर्षा गई, शरद्-ऋतु आई; शरद् गई, शिशिर-ऋतु आई; एक-एक कर सब ऋतुयें आईं और चली गईं। किन्तु ललित लौटकर नहीं आया !

१६

दस वर्ष के बाद !

श्यामू अब ललित को भूल गया था। उस समय वह एण्ट्रेंस में पढ़ रहा था।

दुलारी की माँ श्यामू और दुलारी के साथ चित्रकूट गईं थी। श्यामू अपनी माँ और नानी के साथ कामतानाथ का दर्शन करके लौट रहा था। साथ में नौकर आदि भी थे।

डूबते हुए सूर्य की किरणें रमणीय चित्रकूट-गिरि की चोटी पर से झाँक रही थीं—धीरे-धीरे अंधकार उनके बदन-मंडल पर से रक्त अंचल हटाकर काली ओढ़नी डाल रहा था।

श्यामू को प्यास लगी। पास में कहीं कुआँ नहीं था। चलते-चलते पैर में दर्द हो रहा था। एक स्थान पर आकर सब-के-सब खड़े हो गये। कारण, एक कुटी में से दीपक का मन्द-मन्द प्रकाश आ रहा था।

श्यामू ने कहा—यहाँ पानी मिल जायगा। किसी साधु की कुटी मालूम पड़ती है।

सब लोग कुटी के सामने आ गये थे। देखा, एक साधु बैठा हुआ कुछ गुनगुना रहा था।

श्यामू ने कहा—बाबा, पानी मिल सकता है ?

हाँ-हाँ, पानी की क्या कमी है, अभी देता हूँ।

यह कहकर साधु ने अपना कमंडल उठाया। फिर, न जाने क्यों, बड़े आश्चर्य से देखने लगा। पहचान गया—यह तो श्यामू है! पर कुछ कह न सका, चुप था। अन्त में पानी देते हुए कहा—लो बच्चा, पानी पी लो।

श्यामू ने पानी पी लिया। तब साधु ने और सब की तरफ देखते हुए कहा—और जिसे प्यास हो, पी ले।

किन्तु और किसी को प्यास नहीं लगी थी। साधु का हृदय धक-धक कर रहा था। वह कुछ कहना चाहता था; पर कह नहीं सका। झट कुटी में से एक अनार लाकर श्यामू के हाथ में देते हुए कहा—बच्चा, यह प्रसाद है; लो, इसे खा लेना; ईश्वर तुम्हें विद्वान् और यशस्वी बनायें; संसार में तुम्हें सुख-शान्ति मिले—यही मेरा आशीर्वाद है।

यहाँ तक कहते-कहते साधु का कंठ रुँधने लगा। दुलारी उसकी तरफ देख रही थी। साधु ने भी उसकी तरफ एक बार देखा।

श्यामू उस साधु को कुछ रुपये देना चाहता था। किन्तु उसका साहस न हुआ। उसने और साधुओं से इसमें बड़ा अन्तर पाया। इसके मुख पर एक असाधारण तेज था।

श्यामू सादर सिर झुकाकर प्रणाम करके आगे बढ़ा। साधु ने एक बार आकाश की तरफ देखा।

उसी समय सब लोग जाने लगे। थोड़ी देर में वे लोग साधु की आँखों से ओट हो गये।

दुलारी बार-बार यही सोचती जाती थी कि साधु ने श्यामू को हृदय से आशीर्वाद दिया है—इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है।

ललित के शान्तिपूर्ण हृदय को दुलारी ने फिर से एक क्षण के लिए अशान्त बना दिया। हवा के झोंके से दीपक की लौ झलमला कर फिर सीधी होकर जलने लगी।